# मैं भूल नहीं सकता

—हृदयस्पर्शी, रोचक तथा शिक्षाप्रद संस्मरण—

कैलासनाथ काटजू
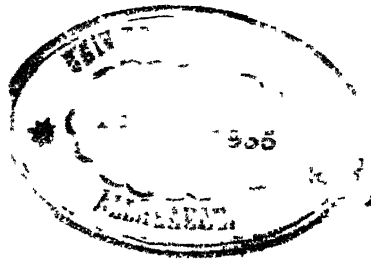
•

१९५५

सस्ता साहित्य - प्रकाशन

# प्रकाशकीय

इस पुस्तक में डा० कैलासनाथ काटजू के संस्मरणात्मक तथा कुछ अन्य लेखों का संग्रह किया गया है। इन रचनाओ को हम दो श्रेणियो में रख सकते है : १. व्यक्तियो के संस्मरण २. अदालती मामलो की यथार्थ कहानियाँ। पहली श्रेणी के संस्मरण जहाँ हमारे मर्म को स्पर्श करते है, वहाँ दूसरी श्रेणी की कहानियों से न केवल हमारा मनोरंजन होता है, अपितु निजी स्वार्थ के लिए अदालती मामलो में होनेवाले प्रपंचों के प्रति तिरस्कार का भाव भी पैदा होता है।

विद्वान लेखक के सोचने का ढंग अपना है। इसलिए उन्होंने इस सग्रह की कुछ रचनाओं में प्रचलित मान्यताओं के विपरीत एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। लेखन-शैली का तो कहना ही क्या! वह इतनी रोचक और सजीव है कि सामान्य घटनाओ में भी उससे जान पड़ गई है। अदालती मामले तो इतने दिलचस्प है कि उन्हें पढ़ने में कहानी का-सा आनन्द आता है।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को चाव से पढ़ेंगे और इसके द्वारा उन्हें पर्याप्त विचार-सामग्री प्राप्त होगी।

—मंत्री

# भूमिका

इस किताब मे मेरे लेखो का सग्रह है । इनमे से कईएक लेख तो अदालती मुकद्दमो के है, जिनमे अपनी वकालत के दिनो मे मुझे वास्ता पडा था। लेकिन कुछ लेख ऐसे व्यक्तियो के भी है, जिनमे मुझे विशेषता दिखाई दी थी । मै खासतौर पर पाठको का ध्यान दो लेखो की ओर दिलाना चाहता हूँ। एक मेरी माताजी के बारे मे है, दूसरा पिताजी के। ऐसा मै इसलिए नही कर रहा कि वे कोई साहित्यिक दृष्टि से बडे ऊँचे दर्जे के हैं, बल्कि उनके विषय की दृष्टि से । बरसो पहले मेरी धारणा हुई कि हरएक बाल-बच्चेदार मनुष्य का यह फर्ज है कि वह अपने बच्चो और नाती-पोतो के लिए अपने माता-पिता तथा पूर्वजो का हाल लिख कर छोड दे। मिसाल के तौर पर, मेरे नाती-पोतो को मेरे माता-पिता का परिचय सिवा उनके नाम-धाम की जानकारी के और क्या हो सकता था ? मैने सोचा कि यह ठीक नही है, और मुझे ऐसा परिचय तैयार करने की कोशिश करनी चाहिए, जिससे मेरे नाती-पोतो को साफ मालूम हो जाय कि उनके बाप-दादे कैसे थे, उनकी आदते कैसी थी, किस तरीके के उनके विचार थे और वे कैसे जिंदगी बिताते थे । सबसे पहले मैने 'माताजी' लेख लिखा । सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक 'सरस्वती' के सपादक मेरे मित्र, श्री देवीदत्त शुक्ल ने उसे देखा और छापने की इच्छा प्रकट की । मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैने उसे उन्हे बताया भी, क्योकि वह लेख मैने महज अपने घर के लोगो के लाभ के लिए लिखा था। मेरे मन मे कभी भी यह बात नही आई थी कि वह छप भी सकेगा । शुक्लजी ने कहा कि यह ठीक है कि इस लेख मे कोई खास साहित्यिक छटा नही है, किन्तु वह इस तरीके से बेमिसाल है कि हमारे देश मे अबतक किसी ने भी अपनी माताजी के बारे में खास तौर पर नही लिखा । मेरा ख्याल है कि मेरी माताजी लाखो मे एक थी और उनका दिल और दिमाग आला दर्जे का था। मगर उसके साथ ही मेरा मानना है कि भारत मे हमारी सारी माताएँ अपने घर-बार के प्रति अपने निस्स्वार्थ एव निष्ठापूर्ण कर्त्तव्य-पालन मे सचमुच देवियाँ ही होती है। भारतवासी अपनी माताओ के ऋणी है, इसे वे वास्तव मे, समझ नही पाते। मै अपनी मेहनत को सफल मानूगा और गर्व अनुभव करूगा, अगर मेरे इन लेखो से प्रेरित होकर हमारे पाठक अपने माँ-बाप के बारे मे जरूरी जान-कारी लिख कर तैयार कर दे। हमारे देश मे कुछ ऐसा साहित्य भी निकलना चाहिए, जो पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखता हो और उसमे सिर्फ बडे लोगो का ही नही, बल्कि उन लोगो का भी जिक्र

होना चाहिए, जिनके पास बहुत ज्यादा धन-सम्पत्ति नही है ।

वकीलो के बारे मे आजकल सब तरह की बाते कही जाती है। किसी की कैसी भी राय क्यो न हो, लेकिन इस बात मे इकार नही किया जा सकता कि अपनी वकालत के दरम्यान वकीलो का समाज के सभी वर्गो से वास्ता पडता है। कोई भी दल या पेशा ऐसा नही है, जिनके लोगो को अदालत मे न आना पडता हो। मालिक और मजदूर, चिकित्सक और उनके रोगी, इजीनियर, ठेकेदार, व्यवसायी, सम्पत्ति और चाल-चलन सम्बधी झगडे, ये सब फैसले के लिए अदालतो मे पहुँचते है और मुकद्दमेबाजी के दरम्यान आदमी का स्वभाव ऊपर उभर आता है। लोग देखते है कि आदमी का दिमाग कितने जुदे-जुदे तरीके पर काम करता है। सच यह है कि अदालतो मे अक्सर जिन्दगी का ऊपरी पहलू ही सामने आता है। अगर आदमी की नेकनीयती के आवश्यक गुण पर निष्ठा बनाए रखने की सावधानी न बरती जाय तो सचमुच हमारे मायूस होने का बडा खतरा है।

कुछ लेखो मे इस बात की मिसाले पेश की गई है कि बहस-मुबाहसे मे सही और सक्षेप मे बोलने मे कितना लाभ होता है। वकालत के लिए भी बडी चतुराई की जरूरत होती है। वास्तव मे वकील ही अपने साथी वकीलो की योग्यता को आक सकता है। वकालत का सार यह है कि किसी भी मामले का निचोड लेकर अदालत के सामने यथासभव थोडे-से-थोडे मे इस ढग से पेश किया जाय कि अदालत कायल हो जाय। इस सम्बन्ध मे 'पहियो के निशान' एक अच्छा उदाहरण है और उसकी ओर मै खास तौर से पाठको का ध्यान खीचना चाहता हूँ।

बाकी के कई लेखो मे भी अदालती मामलो की घटनाएँ है, जो रोचक होते हुए भी पाठको के लिए अपना विशेष महत्व रखती है। 'दैनिक समस्याएँ और उनका समाधान' मे मैने परिवारो के जीवन को सुखी और शात बनाने का एक नया उपाय बताया है। इसी तरह 'अपराध और अपराधी' मे अपराधियो के प्रति अपने वर्तमान रवैये को बदलने का सुझाव दिया है।

'जवाहरलाल नेहरू वकील के रूप में' जवाहरलाल के वकालत के दिनो की तथा बाद मे विशेष अवसरो पर वकील के रूप मे उनके अदालत मे जाने की दिलचस्प कहानी है।

मुझे खुशी है कि यह किताब हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन-सस्था, सस्ता साहित्य मण्डल, से निकल रही है।

आशा है, हिन्दी के पाठक इसके लेखो को चाव से पढेगे।

**१, क्वीन विक्टोरिया रोड,**
**नई दिल्ली, १ मार्च १९५५**

# विषय-सूची

माताजी

# मैं भूल नहीं सकता

: १ :

## माताजी

हरएक को अपनी माता प्यारी होती है और माता के समान इस लोक मे दूसरा कोई नही दीखता, परन्तु मेरी माता केवल मुझको ही प्यारी नही थी, जिन-जिनसे उनका सम्पर्क हुआ उनको वह सैकडो-हजारो मे एक मालूम हुई । मुझे अब लगता है कि मेरी माता ५० वर्ष जल्दी पैदा हुई । यदि ५० वर्ष बाद पैदा होती तो उनके जो विचार थे और ईश्वर ने जो बुद्धि उनको दी थी उसको देखते हुए वह हमारे देश मे महिला-समाज के लिए बहुत उत्तम कार्य करती और समाज मे बडा नाम पाती ।

मेरी माता अपने माता-पिता की इकलौती सतान थी । उनके पिता पण्डित नन्दलाल काश्मीरी पण्डित थे । वह पजाब मे पहले जिला हिसार और बाद मे बहुत वर्षों तक होशियारपुर मे सरकारी अधिकारी रहे । मेरी माता का जन्म माघ सवत् १९१५ (जनवरी १८५९) मे सिरसा, जिला हिसार में हुआ । मा-बाप ने नाम रामप्यारी रक्खा । ससुराल मे सुहागरानी कहलाईं । वास्तव मे दोनो नाम सुन्दर और शुभ घडी मे रक्खे गये । वह निस्सदेह राम की प्यारी थी और अन्त समय में अपने विवाह के ७१ वर्ष पश्चात् अपना सुहाग अपने साथ ले गई ।

नन्दलालजी अपनी बेटी को बहुत चाहते थे । घर मे रामप्यारी और दादी दोनो मौजूद थी । प्यार-दुलार तो बच्ची का बहुत था, लेकिन वह जमाना कुछ और ही था । महिलाओ मे शिक्षा इत्यादि का चलन नही था । मेरी माताजी कहा करती थी कि उनकी दादी को यह बात जम गई थी कि रूस के रहने वाले सब घुड़मुहे होते है ? धुए की गाडी, यानी

रेल, उन दिनो नई-नई निकली थी, मगर हमारी दादीजी को मरतेदम तक यह विश्वास नही हुआ कि इजन भाप से चल सकता है। रेल पर तो कभी बैठी ही नही थी। घर मे स्त्रियो का तो यह हाल था, परन्तु पिता-जी को विद्या से बडा प्रेम था। बहुत उमग से अपनी पत्नी के मना करने पर भी बेटी को खुद पढाया-लिखाया। बाप से हिन्दी और फारसी सीखी, दिमाग ईश्वर ने बहुत अच्छा दिया था। सस्कृत खूब पढी और गणित भी। भूगोल, नक्षत्र-ज्ञान अच्छी तरह जानती थी और ज्योतिष मे तो इतना कमाल था कि बडे-बडे पण्डितो और ज्योतिषियो से वार्तालाप करती थी। फारसी मे 'गुलिस्ता-बोस्ता' और 'दीवान हाफिज' बराबर याद थे। विचार-शक्ति बहुत ऊची थी। जो एक दफा पढती या सुनती थी वह सदा के लिए याद रहता था। धर्मशास्त्र अपने आप सब पढे थे, और गीता तो कठस्थ-सी थी।

नौ वर्ष की अवस्था मे सवत् १९७५ (१८६८) मे मेरे पिता पण्डित त्रिभुवननाथजी काटजू के साथ विवाह हुआ। हमारा घर जावरा (मालवा प्रान्त) मे है, शहरो से दूर एक कोने मे। सवत् १९२५ मे जावरे मे रेल भी नही थी। छोटी जगह, पुराने विचार, पुराने चलन और रीति-रिवाज। मेरी माताजी यहाँ ५० वर्ष की आयु तक पर्दे मे बन्द रही। विवाह छोटी आयु में हुआ था और थोडे अरसे के बाद सब घर-गृहस्थी का बोझ उनपर पड गया। देवर-जेठ सब अलग रहते थे। घर का कुल काम-धन्धा, रोटी-पानी, बच्चो का पालना-पोसना, कपडो की सिलाई, सब अपने आप करती थी और उसपर पढने-लिखने की रुचि। खुद पढती थी और दूसरो को पढ़ाती थी। दोपहर को १-२ बजे जब घर के धन्धे से कुछ सुभीता मिलता तो मोहल्ले की लडकिया आ जाती और छोटी-सी पाठशाला लग जाती और मेरी माताजी लडकियो को पढना-लिखना सिखाती थी।

काश्मीरी पण्डितो मे परदा बाहर वालो से होता है। घर मे ससुर या जेठ से नही होता। कुटुम्ब के जितने लोग थे, उनकी गिनती काफी थी। वे सब स्त्री-पुरुष मेरी माताजी को घेरे रहते थे। घर के सब पुरुष और

लडके उनसे बीसो बातो पर वार्तालात करते थे । कभी समाचार-पत्र सुनाना, कभी दुनिया की चर्चा, राजनैतिक बाते । रियासत के मामले वह सब सुनती और समझती थी । मुझसे कहती थी कि एक दफे विवाह के कुछ वर्षो बाद तुम्हारे ताऊ शाम को आये और कहने लगे कि सुहागरानी, आज शाम को नवाब साहब के यहाँ एक सज्जन ने एक सवाल बताया कि अखबार मे छपा है, लेकिन हम लोगो मे से किसीको उसका जवाब नहीं बन पडा । मैंने पूछा, क्या सवाल था, तो कहने लगे, सवाल था कि एक आदमी के नौ लडके और उसके पास ८१ मोती, और मोती के दाम इस तरह कि एक मोती एक रुपये का और दूसरा दो का और तीसरा तीन का और इस प्रकार एक-एक रुपया बढता जाय और ८१वे का दाम ८१ रु० हो । पिताजी चाहते है कि हरएक लडके को ९-९ बाट दे, परन्तु बटवारा ऐसा हो कि हरएक का कीमत मे हिस्सा बराबर हो । मैंने सुना, मै चुप हो गई, सवाल कुछ कठिन लगा । जब सब लोग सो गए, मै कागज-पेन्सिल लेकर बैठी और दो घटे मे मैंने सवाल हल कर दिया और उसका उत्तर तुम्हारे ताऊजी को दूसरे दिन दे दिया । उनको बडा आश्चर्य हुआ । नवाब साहब के दरबार मे ले गये, और वहाँ बडे गौरव से बयान किया कि मेरी भावज ने सवाल सही कर दिया । सब लोग दग रह गये ।

वास्तव मे २०-२२ वर्ष की आयु की एक महिला के लिए, जिसने अपने घर मे खुद ही पढना-लिखना तथा गणित सीखा हो, ऐसे प्रश्न का सही हल करना एक आश्चर्यजनक बात थी ।

मेरी माताजी घर मे साधारण स्त्री की तरह सभी कामधन्धा करती थी, परन्तु उनके विचार उस समय को देखते हुए और जिस वातावरण मे उनका जीवन बीत रहा था, बिलकुल निराले और बहुत ऊचे थे । उनका दृढ विश्वास था कि मर्दो ने स्त्रियो को दबा रक्खा है और वह कहा करती थी कि वे औरतो को पशुओ की तरह अपनी जायदाद समझते है । कहती थी कि हमको चूल्हे के सुपुर्द कर दिया है । औरतो को मर्द रोटी-कपडा देकर यह समझते है कि उनके घर की दासी है । मै जब बडा हुआ और

इन बातो को समझने लगा तो मैं हँसता था और कहता था "अम्माजी, तुम रसोईघर मे चूल्हे के पास बैठकर अन्नपूर्णादेवी मालूम होती हो।" इस-पर वह बहुत बिगडती थी और कहती थी कि तुम लोगो ने यही कह-कह कर मीठी-मीठी बातो मे लुभा कर, हमको अपाहिज बना रक्खा है। उनकी जबरदस्त इच्छा थी कि हरएक स्त्री इतना पढ-लिख ले और हुनर-दस्तकारी सीख ले कि वह अपना पेट खुद पाल सके और मर्दों का मुँह देखती न रहे। कहती थी कि मैं शादी-विवाह के खिलाफ नही हूँ घर-गृहस्थी करना तो स्त्रियो का धर्म है। मगर मैं नही चाहती कि स्त्रिया दबैल बनकर रहे। स्त्री और पुरुष मे वह पूरी बराबरी की दावेदार थी और उनका अपना विचार यह था कि बराबरी की ही बुनियाद पर पति और पत्नी अपना घर चलाए। इस दृष्टि से वह स्त्री-शिक्षा की बडी जबरदस्त समर्थक थी और जब कभी सुनती या समाचार-पत्र मे पढती कि देश की किसी स्त्री ने बी० ए०, एम० ए० पास किया है या नाम हासिल किया तो बाग-बाग हो जाती थी। यह चर्चा मैं आज की नही करता हूँ, बल्कि ६०-६५ वर्ष पहले की, जब कि गाव व कस्बे की तो बात दूर, बडे-बडे नगरो मे भी स्त्री-शिक्षा का प्रचार नही था।

सन्तानोत्पत्ति के बारे मे भी उनके विचार ऐसे थे, जो अब पाये जा रहे है। ब्रह्मचर्य और उसके द्वारा सन्तान-निग्रह की वह बडी पक्षपाती थी। कहती थी कि बच्चो के बीच मे कम-से-कम चार-चार वर्षों का अन्तर होना चाहिए, ताकि एक बच्चा मा का दूध पी कर बडा हो जाय। मा उसकी पूरी-पूरी देख-भाल, पालन-पोषण करले तब दूसरा बच्चा उत्पन्न हो। किसी स्त्री को जल्दी-जल्दी हर दूसरे साल बच्चा होना सुनती थी तो उनको घृणा होती थी और इसका प्रचार वह अपने कुटुम्ब की और सम्पर्क मे आनेवाली स्त्रियो मे करती थी।

विवाह के सम्बन्ध मे भी उनके विचार बडे स्वतन्त्र थे। छोटी आयु की शादी उन्हे बडी नापसन्द थी और बिरादरी मे ही शादी होना आवश्यक नही समझती थी। सब ब्राह्मणो को एक ही मानती थी। प्रत्येक वर्ग मे जो

सहस्त्रो लडे पड गई है और एक-दूसरे में व्यावहारिक मतभेद हो गया है, इस कैद को भी बुरा मानती थीं।

जीवन उनका एक सच्चा धार्मिक जीवन था। शिवजी की बडी भक्त थीं और नियम के साथ रोज उपासना करती थीं। इसी कारण उन्होंने मेरा और मेरे भाई का कैलासनाथ और अमरनाथ नाम रक्खा था। धार्मिक पुस्तकें बहुत पढी हुई थीं। खाने-पीने में छूतछात का विचार तो करना ही पडता था, लेकिन उसमें बहुत कट्टर नहीं थीं। कहा करती थीं कि शास्त्रो में जितनी खाने-पीने की मनाइया लिखी हुई है उनका धर्म से और ईश्वर की भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो सब अपने शरीर के रक्षार्थ हैं। छूत-छात से बहुत बीमारिया हो जाती हैं। उसके रोक-थाम के लिए हमारे ऋषियों ने यह सब कायदे बनाये। लोग उनको मानें, इस वास्ते उनको धार्मिक रूप दे दिया, वरना यह तो सब डाक्टरी शिक्षा है।

सवत् १९६५ में मैंने अपनी वकालत का काम कानपुर में आरम्भ किया। ६ वर्ष वहा रहकर सवत् १९७१ से प्रयाग हाईकोर्ट में वकालत करने लगा। हम लोगो का सबसे पहले सयुक्त प्रान्त से कोई वास्ता नहीं था, परन्तु अब तो प्रयाग में अपना घर-द्वार बना लिया है। मेरी वकालत तो मेरी माताजी के लिए आजादी का कारण हो गई। वह सवत् १९६६ से मेरे पास कानपुर और प्रयाग में आने-जाने लगीं। कहा तो जावरे की मुसल्मानी रियासत, परदे का जोर, कहीं बाहर निकलना नहीं होता था, मदिर में आने-जाने का भी दस्तूर नहीं था, और कहा कानपुर और प्रयाग में गगाजी का तट और आने-जाने की कोई बाधा नहीं। घर का काम-धन्धा कानपुर में तो सब वैसा ही था जैसा जावरे में। मेरी नई वकालत, नई जगह, सभी कठिनाइया थीं परन्तु वह मग्न रहती थीं। बेटे की घर-गृहस्थी जमाना, इसमें ही क्या कम आनन्द था और उसपर परदे की कोई ज्यादा रोक-टोक नहीं। रोज गगाजी जाती, स्नान करती, कैलास मदिर में दर्शन करती और घर आती थीं। बिरादरी के और गैर-बिरादरी के बहुत-से घरो से हमारा मेल-जोल हुआ, उन सबसे मिलना-जुलना माताजी को बहुत अच्छा लगता था।

यहा भी खूब दुनिया की चर्चा रहती थी और वह अपनी ज्ञान-वृद्धि बराबर करती जाती थी। प्रयाग मे ७–८ वर्ष तो मैं किराये के मकान मे रहा पश्चात् १९३९ मे अपना बगला खरीद लिया। अब तो माताजी को पूर्ण अवसर मिला कि अपनी इच्छानुसार काम करे। प्रयाग मे प्राय साल-साल, दो-दो साल आकर रहती थी। त्रिवेनी—गगाजी, जमुनाजी के स्नान बराबर होते थे। शिवकुटी और पचमुखी महादेव के शिवालो मे जाकर उनके दर्शन करने का प्रेम था। सदा वहा जाती थी, साधु-सतो की भी सेवा करना उनका खास काम था। घर मे सदा पूजा-पाठ, कथा-हवन इत्यादि होते ही रहते थे। पण्डितो-पुजारियो मे वार्तालाप होता था परन्तु किसी पण्डितजी महाराज की क्या मजाल कि जो पूजा करने मे विधिपूर्वक कोई कमी करे या किसी मत्र का उच्चारण अशुद्ध करे। उनको मत्र सब याद थे। सबके अर्थ समझती थीं और देखती रहती थी कि पूरा कार्य शुद्ध रूप से समाप्त हो। दानी भी थीं और गुप्त दान देने मे उन्हे बडी रुचि थी। किसी को मालूम नही होता था कि माताजी किस-किस की क्या सहायता कर रही है। चलने-फिरने, हवा खाने को बडी उत्सुक रहती थी, मैंने गगा किनारे एक बगीचा लिया था। वहा जाकर रहना तो उनको बहुत ही पसन्द था। प्रयाग मे आकर मुझे मालूम हुआ कि उनका बागवानी मे कितना दखल था! मालियो को अपने सामने खडे होकर उपदेश देती, फूलो के पौधे और फल के पेड लगवाती, उनके हाथ के बहुत-से आम, अमरूद इत्यादि के पेड, चमेली-गुलाब के पौधे उनकी स्मृति के रूप मे मेरे बगले और बाग में मौजूद है।

गो-सेवा सदा तन-मन से करती थी और गऊ के बच्चा होना तो हमारे घर मे ऐसा होता था कि जैसे किसी बहू-बेटी का जापा हुआ है। हफ्तो पहले से गाय घर मे आ जाती थी, उसकी देख-भाल माताजी स्वय करती थीं और बच्चा उत्पन्न होने के बाद उसकी सेवा, उसकी खिलाई-पिलाई महीनो बडे ध्यान से की जाती थी। कही बछिया पैदा हुई तो माताजी निहाल हो गई। वह बछिया फिर घर मे ही गाय बनती थी और ऐसी कई गाएं बेटी और नवासी अभी तक है। जबतक बछडा बडा नही हो जाता था तब-

तक माताजी का आदेश था कि एक थन का दूध बचा कर छोडा जाय। जानवरो की चिकित्सा मे भी काफी दखल था। कुत्ते-बिल्ली मे नफरत थी। कहती थी कि कुत्ता गन्दा और बिल्ली विश्वासघातक होती है, लेकिन रग-बिरगी चिडिया, तोते-मैना बहुत पसन्द आते थे और उनकी रक्षा करती थी।

डाक्टरी की तरफ माताजी का खास रुझान था। बगैर किसी परीक्षा पास किये अच्छा खासा अभ्यास और जानकारी हो गई थी। मनुष्य का ढाचा और उसकी बनावट, और दिल, दिमाग, कान, आख सब अगो की क्रियाएँ खूब अच्छी तरह जानती थी। स्त्री-जाति की बीमारिया और प्रसूति इत्यादि के मामले मे तो उनकी योग्यता असाधारण थी। घर मे बहू-बेटियो का ही नही, बल्कि मोहल्ले के रहने वाले और प्रयाग मे हाते के नौकर-चाकरो मे माताजी का ही इलाज औरतो-बच्चो का हुआ करता था। हिकमत और आयुर्वेदिक दवाओ से अच्छी जानकारी थी। मरीज की देखभाल, सेवा और नर्सिग भी बडी रुचि तथा तन-मन से करती थी।

ये गुण तो थे ही, परन्तु जो बात उनकी तरफ हरएक को खीचती थी, वह था उनका स्वभाव। क्या बडे, क्या बूढे और क्या बच्चे, सब उनसे खुश रहते थे। पुराने ख्याल की बडी-बूढी औरतो मे माताजी की बडी कदर थी। बिरादरी के सब रस्म-रिवाज, शादी-ब्याह के अवसर पर लेना-देना विधिपूर्वक पूजा-पाठ इत्यादि सब मामलो मे माताजी की राय मागी जाती थी और उसपर अमल होता था। घर मे स्कूल और कालेज के पढने वाले बालक और बालिकाए अम्माजी के पास रुचि से बैठा करते थे। भारत का इतिहास उनको याद था। गाना-बजाना सीखा नही था और न जानती थी, मगर सुनने का बडा शौक था। मेरी लडकी लीला का गला बहुत अच्छा था। मीरा के भजन बडे प्रेम से गाती थी। माताजी घटो सुनती और लीन हो जाती। मगर सबसे अधिक तो उनकी पूछ-ताछ थी कुटुम्ब के पुरुषो मे। हमारे घर मे ईश्वर की दया से सब ही है जज, वकील, डाक्टर, इजीनियर

कारबारी और हर तरह के सरकारी—ओहदेदार—बराबर आना-जाना लगा रहता था। जब मैं नौकर से पूछता कि वह साहब कहा है, उत्तर मिलता, बहूजी के पास बैठे है। जो आता, सीधा सुहागरानी चाची के पास जाता, अपना दु ख-दर्द बयान करता। वह बड प्रम से सब कथा सुनती और नेक सलाह देती। हरएक के साथ उसके कार्य के बारे मे बात-चीत करने का माताजी का खास ढग था। इजीनियर के साथ इजीनियरी के मामलो पर बहस करनी थी और डाक्टरो के साथ डाक्टरी की बाबत, मै तो अक्सर रात को भोजन करके उनकी गोद मे अपना सर रख के लेट जाता और उनसे अपने मुकदमो का हाल बयान करता था। अपने अनुभव और बुद्धि से ऐसे-ऐसे नुकते निकालती कि उनमे बडी मदद मिलती थी।

दु ख-दर्द मे माताजी के समान तसल्ली देने वाला,सन्तोष कराने वाला शायद ही कोई होगा। दुखग्रस्त लोगो को उन्हे देखकर और उनके शान्ति-पूर्ण उपदेशो से बडा सन्तोष मिलता था। स्वर्गवासी स्वरूपरानीजी नेहरू के साथ मेरी माताजी का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। वह मेरी माता-जी को अपनी बडी बहन मानने लगी थी और उसी नाते से मुझको भी अपना बेटा कहती थी। जिस हलके मे उनका मिलना-जुलना था और जीवन बीतता था, और वह प्रयाग मे एक काफी बडा हलका था, उसमे माताजी का प्रभाव काफी था।

राजनैतिक मामलो मे बडी दिलचस्पी थी और बराबर उसकी जान-कारी रखती थी।

हिन्दुस्तान की गरीब जनता की भलाई हर समय उनकी निगाह के सामने रहती थी और इस विषय मे गाधीजी को बराबर सराहा करती थी। इसी दृष्टि से काग्रेस मत्रिमडल की शराब के बारे मे जो नीति थी, वह उसका जोर के साथ समर्थन करती थी। चाय पीने के बहुत खिलाफ थी। प्रयाग मे माघ मेला था। त्रिवेनी स्नान करने गई। वहा से लौटने पर मुझसे बड़ी नाराज हुई। कहने लगी कि तुम लोग प्रबन्ध नही करते हो। गरीबो का नाश हो जायगा। मैंने पूछा, "अम्माजी, आखिर क्या

मामला है ?" मालूम हुआ कि चाय के प्रचार करने के लिए चाय-बगीचो के मालिको की तरफ से गगा के तट पर कैम्प लगा है, वहा चाय मुफ्त बाटी जा रही है। उनका तो काम चाय के प्रचार का था, लोगो को मुफ्त चाय पिलाते थे, ताकि आदत पड जाय। माताजी का विचार था कि दूध-दही खाने की देश मे आवश्यकता है और चाय से हिन्दुस्तान मे स्वास्थ्य खराब हो जाता है, भूख कम हो जाती है। मुझसे कहने लगी कि तुम सरकार वाले थोडी आमदनी के लिए भारत का सत्यानाश करते हो।

माताजी की बोलचाल मीठी और गभीर होती थी। व्यर्थ वार्तालाप और कोरे बकवास से उनको घृणा थी। अन्त समय तक उत्सुक थी कि वह कुछ नई बाते सीखे और जानकारी को बढावे। शान्ति की मूर्त्ति थी। मैने कभी उन्हे क्रोधित होने नही देखा। न कभी हर्ष होता था, न द्वेष करती थी। सुख-दुख मे समान रहती थी। रोने-धोने की आदत नही थी। घर मे बहुत शादिया हुई, लडकियो के बिदा होने के समय घर-भर रोता है और आसू गिराता है, परन्तु माताजी वैसी-की-वैसी ही शान्त रहती थी। मैने कभी भी एक आसू गिराते उन्हे नही देखा और अगर बेटी, पोती माताजी से अलग होते समय रोती थी तो उसको माताजी मना करती थी। माताजी ने दुख भी उठाए, बडी प्यारी पाली-पोसी ब्याहता बेटी-पोती उनके सामने गुजर गई, लेकिन उस सदमे को भी उन्होने बहुत सब्र, शान्ति तथा हिम्मत के साथ झेला।

हरेक के साथ उनका बर्ताव अच्छा होता था। मैके मे एक भाई गोद आया था। ननद-भौजाई मे मैने ऐसा मेल नही देखा। लगता था, जैसे दो सगी बहने हो। मेरी मामी मुझे बेटा समझती थी और मै उनको माता के समान मानता था। उन्हीके घर जाकर मैने लाहौर मे ५ वर्ष रहकर बी० ए० पास किया। मेरे मामूजी की सन्तान और उनके जमाई दीवान बहादुर ब्रजमोहननाथ जुत्शी को मेरी माताजी से जैसा प्रेम था उसका मै वर्णन नही कर सकता। अपने घर मे माताजी अपनी बेटियो से ज्यादा बहुओ को प्यार करती थी। कहती थी कि बेटिया तो दूसरो के

घर गई। मेरे घर की आबादी तो बहुओ से है। नतीजा यह कि घर मे कभी कोई खटपट नही। हमेशा शान्ति, हरएक खुश और मगन। बहुओ की दृष्टि मे माताजी सास नही थी, परन्तु माता के समान थी।

अभ्यास करते-करते माताजी को ज्योतिष मे बहुत दखल हो गया था। जब प्रयाग मे होती तो हाते के नौकर-चाकरो के बच्चो की जन्म-कुण्डली बनाती थी। मेरे पास जब कोई ज्योतिषी आते, मै उनकी माताजी से भेट करा देता। नतीजा यह होता कि मुझे तो छुटकारा मिल जाता और उनकी कलई खुल जाती। मेरी जानकारी मे माताजी की बताई हुई बाते बहुत सच निकली। चालीस वर्ष पहले जब मै कालेज मे पढता था उन्होने मेरे कुल जीवन का नक्शा खीच दिया था। इन चालीस वर्षों के बारे मे बताई हुई सब बाते सही निकली।

खाने-पीने मे वह बहुत पाबन्द थी। मेरे हाथ का छुआ हुआ कच्चा खाना नही खाती थी, मगर अछूतपना बिलकुल नही मानती थी। मैने उनको चमार व भगी औरतो और बच्चो को अपने पास प्रेम से बिठाने, उनकी दवा करने और बच्चो को गोद मे लेते देखा है।

हम पाच भाई-बहन थे। सबको ही प्यार करती थी। मगर सब कहते थे कि मेरे प्रति स्नेह अधिक था। कहा करती थी, "मेरे २४ वर्ष तक कोई सन्तान नही हुई। मुझे इसका कुछ अधिक दुख नही था। मुझे सन्तान की ज्यादा अभिलाषा नही थी, झझट ही समझती थी। उस उमर मे पहली औलाद लड़की हुई तो मुझे जरूर कामना हुई कि ईश्वर ने जब सन्तान दी तो पुत्र भी दे और मैने शिवजी से ऐसी ही प्रार्थना की। तू चार वर्ष बाद उत्पन्न हुआ तो मेरी सास कहने लगी कि काटजू-खान्दान मे दो पीढियो से कोई लडका पैदा नही हुआ। गोद माग कर यह घर चला है। मेरे भाग्य मे कहा कि मै इस लडके का सुख पाऊ। उनका कहना सच ही निकला और आठ महीने ही मे परलोक सिधार गई। मै भी बीमार पड गई। जापे के बाद से ही दो वर्ष ज्वर आया, मानो दिक (क्षय) हो गया, मरते-मरते बची। रातो व्याकुल हो जाती थी, आसू निकल आते

थे और सोचती थी कि यह बच्चा इतनी कामनाओं से मागा हुआ, मालूम नही किसके हाथो पडेगा। कौन स्त्री इसकी विमाता बनेगी, कौन इसको पालेगी और शिव भगवान् से बार-बार मागती कि तुमने मुझे बच्चा दान दिया तो मुझको आयु भी दीजिए, ताकि उसकी रक्षा कर सकू। भगवान् ने मेरी बिनती सुनी और ऐसी सुनी कि तुझको ही नही पाला-पोसा, बल्कि तेरी सन्तान और उनकी औलाद का सुख भोग रही हू। तू भी मुझसे चिपटा ही रहता था। चार वर्ष तक तूने मेरा दूध पिया है।" ऐसी माता का भार कौन उतार सकता है और कैसे उतरे?

अन्त मे आख चले जाने से उनका चलना-फिरना बन्द हो गया था, तो भी नौकर का हाथ पकडकर प्रात काल बाग मे टहला करती थी जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे। जब ८० वर्ष की अवस्था हो गई तो गौतम बुद्ध के समान कहने लगी कि यह शरीर अब काम का नही रहा, त्यागना उचित है। स्वास्थ्य भी ढीला हो गया था। उन्होने सब तैयारी करली। अपने सामने अपने हाथ से जो गहना उनका था वह बहुओ-बेटियो और उनकी सन्तान को बाट दिया और जितना दान करना चाहती थी सब दान कर दिया। एक ट्रक में अपने लिए एक जोडा साडी इत्यादि रखवा दी कि मरने के बाद पहनाई जाय और अपनी अन्तिम यात्रा के लिए पूरी तैयारी करली। बराबर गीता का पाठ खुद करती थी और सुनती थी। आठवे अध्याय मे उनकी बडी रुचि थी, वैसा ही हुआ। सवत् १९९६ मास श्रावण शुक्ल पक्ष मे प्रदोष के दिन १॥ बजे दोपहर जब कि दिन की ज्वाला भरपूर थी, माताजी ने प्रयागराज की महात्याग भूमि मे, जैसी उनकी मनोकामना थी, अपना शरीर त्याग किया। किसी प्रकार की कोई तकलीफ नही हुई। बाते करते-करते करवट लेकर परलोक चली गई। हम सब उनके पास मौजूद थे, परन्तु मेरी स्त्री बीमारी के कारण नैनीताल मे थी। उनको बुलाया था। आने मे जरा विलम्ब हुआ। बस उन्ही को बार-बार याद करती थी। कई बार पूछा, "लक्ष्मीरानी नही आई? कब आयगी?" फिर जैसे भगवान् ने बताया है

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।**
**तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२।२२॥**

मनुष्य अपने पुराने वस्त्रो को छोडकर नये बदलता है, वैसे ही माताजी ने अपने शरीर का त्याग किया ।

लक्ष्मीरानी कुछ ही घटो के बाद घर पहुच गई और माताजी के अन्तिम दर्शन कर लिये । उस दिन मुझे यह भी ज्ञान हुआ कि हिन्दू स्त्रियो की क्यो अभिलाषा होती है कि वह अपना सुहाग लेकर साथ जाय । माताजी बहुत वर्षो से रगीन किनारे की सफेद साडी पहनती थी । यदि कभी कोई उनको रगीन रेशमी वस्त्र लाकर पहनने को कहता तो उत्तर मिलता कि बुढापे मे क्या यह मुझको शोभा देगा, परन्तु जो साडी उन्होने अन्तिम यात्रा के लिए ट्रक मे निकाल कर रखी थी वह लाल सुन्दर साडी थी और नहला-धुलाकर जब उनको पहनाई गई और सिन्दूर का टीका माथे पर लगाया गया तो ऐसी सुन्दर मालूम होती थी कि जैसे कोई दुलहन हो । कुछ ऐसी ईश्वर की करनी हुई कि उनके चेहरे मे बुढापे के सारे चिन्ह मिट गये और सुहागरानी अपना सुहाग साथ लेकर हँसी-खुशी चली गई ।

## : २ :

## पिताजी

मेरे पिता की कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो सदा प्रतिकूल परिस्थितियो मे ही सघर्ष करते रहे, जिन्होने अपनी सारी शिक्षा आपही ग्रहण की, सच्चाई और आत्म-सम्मान के साथ ही जीवन-यापन किया और जो अपने जीवन-काल मे ही अपनी मिलनसारी तथा प्रेमी स्वभाव के कारण सबके सम्मानित और सबके प्रीति-भाजन रहे ।

मेरे पिताजी गोद गए थे । उनके गोद जाने की घटना बडी महत्वपूर्ण है । वह हिन्दू परिवार के आपस के घनिष्ठ सम्बन्ध का एक सुन्दर उदाहरण है ।

पिताजी
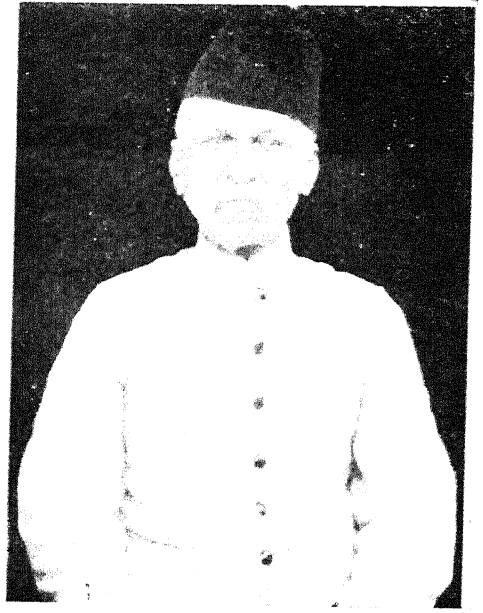
भोलानाथ दर और मनसाराम काटजू काश्मीरी पंडित थे। वे अथवा उनके पिता सन् १७३५ के आसपास काश्मीर से इधर चले आए थे। उन दिनों काश्मीरी पंडितों के इधर आने का मुख्य मार्ग लाहौर होते हुए दिल्ली था और फिर दिल्ली से कई रास्ते हो जाते थे। कुछ परिवार पूर्व में उत्तर प्रदेश, बिहार और बगाल की ओर गए और कुछ पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में राजस्थान अथवा मध्यभारत की ओर आये। सन् १८१८ मे चतुर्थ मराठा-युद्ध हुआ, जिसमे अंग्रेजो ने महाराज होल्कर को परास्त किया, जिसके फलस्वरूप इन्हे अपने राज्य का बहुत-सा हिस्सा ईस्ट इंडिया कम्पनी को देना पडा। इस लडाई मे उनके एक पठान सेनापति गफूरखा ने अंग्रेजो का साथ दिया था। लडाई के बाद महेदपुर की सधि के द्वारा पुरस्कार में उसे महाराज होल्कर से मिली जागीर स्थाई रूप से दे दी गई। गफूरखा ने अपनी इस नई रियासत की राजधानी जावरा नाम के एक छोटे कस्बे मे स्थापित की। इसके कुछ समय बाद मनसाराम काटजू ने गफूरखा के यहा आकर नौकरी कर ली और तबसे यह स्थान काटजू-परिवार का घर बन गया। यह नगर इदौर के उत्तर मे ८० मील दूरी पर अजमेर जाने वाले रेल-मार्ग पर स्थित है।

मनसाराम काटजू का विवाह भोलानाथ दर की एक बहन से हुआ था, पर उनके कोई सतान नही हुई। भोलानाथ दर के दो लडके थे—बद्रीनाथ और ज्वालानाथ। इनमे से बद्रीनाथ को उन्होने अपने बहनोई मनसाराम काटजू को गोद दे दिया। बद्रीनाथ का जन्म १८१५ में दिल्ली में हुआ था। अपने गोद लेनेवाले पिता के निधन के बाद उन्होने जावरा रियासत की नोकरी कर ली और वही सन् १८७५ मे उनका स्वर्गवास हुआ। उनके सगे भाई ज्वालानाथ भी जावरा रियासत की नौकरी मे थे। कुछ वर्ष बाद उनका भी देहान्त हो गया।

दोनो भाइयो ने १८४० और १८४४ में एक-दूसरे से मिले हुए दो छोटे मकान खरीद लिये थे और उन्ही में अपने-अपने परिवार के साथ रहते थे। यद्यपि गोद आ जाने के कारण रिश्ते मे बद्रीनाथ ज्वालानाथ फुफेरे भाई

हो गए थे तो भी जावरा एक छोटा कस्बा होने के कारण दोनो भाई परस्पर बडी आत्मीयता के साथ रहते थे ।

बद्रीनाथ काटजू के एक लडकी थी, पर लडका कोई न था । उनकी लडकी के दो लडके थे, जिनमे से एक को उन्होने गोद ले लिया था । पर दुर्भाग्यवश कुछ ही वर्ष बाद बद्रीनाथ और उनकी स्त्री को शोक-सागर मे छोडकर यह बालक चल बसा । इससे उनकी वृद्धा स्त्री का विशेष रूप से हृदय ही टूट गया । उन्हे अत्यधिक शोकातुर देखकर सगे-सम्बन्धियो ने सलाह दी कि उनके मन को सान्त्वना देने के लिए कोई दूसरा बच्चा गोद लेना चाहिए और वश-परम्परा की रक्षा करनी चाहिए । पर उन्होने ऐसा करने से निरन्तर इन्कार किया और कहा कि भाग्य मे बेटा लिखा ही नही है । यहा मै पति को छोडकर अकेले उन्ही की चर्चा इसलिए कर रहा हूँ कि काश्मीरी पडितो के घरो मे हमेशा स्त्रियो का ही प्रभुत्व रहता है ।

पर ज्वालानाथ की स्त्री की कुछ दूसरी ही योजना थी । उनका परिवार काफी बडा था । सितम्बर १८६१ मे उनके तीसरा लडका हुआ, और जब वह सिर्फ ११ दिन का था, तबसे उसे पासवाले मकान मे बद्रीनाथ की स्त्री के पास ले गई और यह कहकर बच्चा उनकी गोद मे रखकर चली आई कि यह लो, यह तो तुम्हारा ही बच्चा है । बद्रीनाथ की स्त्री यह काण्ड देखकर चकित हो गई । उन्होने बच्चे को लेने से इन्कार किया, पर यह सुनने को अब वहा था ही कौन ? ज्वालानाथ की स्त्री तो वहा से जा चुकी थी । बच्चे के गोद लेने का प्रश्न पूरे आठ महीने तक चलता रहा । बद्रीनाथ की स्त्री बराबर कहती रही कि उन्हे बच्चा नही चाहिए और ज्वालानाथ की स्त्री बराबर बच्चे को वापस लेने से दृढतापूर्वक इन्कार करती रही । अन्त मे जीत उन्ही की हुई और बद्रीनाथ की स्त्री ने बच्चे को रखना स्वीकार किया । यही बालक त्रिभुवननाथ मेरे पिता थे । पुराने समय मे हिन्दू परिवारो मे प्राय. देवरानी-जिठानी का एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता था । स्मरण रहे कि यह एक देवरानी की ओर से जिठानी को भेट किया गया विशुद्ध प्रेम का उपहार था, जिसमे धन-सम्पत्ति का तनिक

भी विचार न था, क्योंकि काटजू-परिवार के पास वह था ही नही।

बचपन में त्रिभुवननाथ की स्कूली शिक्षा बहुत ही कम हुई। जावरा में उन दिनो कोई अगरेजी स्कूल नही था। घर पर मौलवी रखकर उर्दू-फारसी पढाने का ही रिवाज था क्योंकि उस समय यही राजभाषा थी। अत. मौलवी से त्रिभुवननाथ ने भी घर पर ही सामान्य उर्दू-फारसी पढी।

उन्हे गोद लेनेवाले उनके पिता बद्रीनाथ जावरा मे एक जिम्मेदार पद पर थे। उन दिनो ऐसी छोटी रियासतो की देख-रेख के लिए पोलिटिकल विभाग पोलिटिकल एजेण्टो के मातहत पोलिटिकल-एजेन्सिया रखता था। मालवा-एजेन्सी का, जिसमे जावरा भी शामिल था, पोलिटिकल एजेन्ट उज्जैन से ८० मील की दूरी पर स्थित आगर मे रहता था। एजेन्सी के अधीन हर रियासत को यहा अपना एक प्रतिनिधि रखना पडता था, जो 'वकील' कहलाता था। इसका काम था पोलिटिकल एजेन्ट के हेडक्वार्टर में रहना और उसके तथा रियासत के बीच के सारे कागजो का इधर-उधर भेजना। ये काम इसी के मार्फत होते थे। इन्ही वकीलो का एक पचायती बोर्ड भी होता था, जो एजेन्ट की देखरेख मे रियासत की सीमा सम्बन्धी-आपसी झगडो का निपटारा करता था। बद्रीनाथ काटजू कई वर्षों तक मालवा के पोलिटिकल एजेन्ट के यहा जावरा के वकील के रूप मे रहे। एजेन्ट तथा अन्य रियासतो के वकील उनका सदा सम्मान करते थे।

उपर्युक्त कारण से त्रिभुवननाथ की शिक्षा आगर में ही हुई। पर शीघ्र ही वह विपत्ति मे पड गये और उनकी शिक्षा अधिक नही हो पाई। १८७४ में जब वे केवल १३ वर्ष के थे, बद्रीनाथ बीमार पडे। वे कुशाग्र-बुद्धि थे और जावरा के नवाब साहब ने शायद पोलिटिकल एजेन्ट के कहने से १३ वर्ष के इस बालक को ही उनके स्थानापन्न के रूप मे काम करने को नियुक्त कर दिया। इसपर उन्होंने आठ महीने तक बडे कौशल से काम किया, जिससे सबको सन्तोष हुआ। मेरे पिता के बहुत ही प्रिय कागजो मे मालवा के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल मार्टिन का दिया हुआ एक सर्टिफिकेट था, जिसमे इस बालक द्वारा जिम्मेदारियो को योग्यता

और दृढतापूर्वक निभाए जाने की प्रशसा की गई थी। १८७५ मे बद्रीनाथ का देहान्त हो गया और पिताजी को उनकी जगह स्थाई रूप से वकील नियुक्त कर दिया गया। उस समय उनकी उम्र ठीक १३ वर्ष ९ महीने की थी। यह सच है कि उन दिनो अधिकतर नियुक्तिया उत्तराधिकार के आधार पर ही होती थी। पिता की जगह पुत्र को नियुक्त किया जाता था। फिर भी यह एक असाधारण वात थी। त्रिभुवननाथ १८७५ मे नियुक्त होकर अपनी मृत्यु के समय तक, जो १९४५ मे हुई, लगातार ७० वर्ष तक रियासत की नौकरी करते रहे। किसी भी मनुष्य के जीवन मे नौकरी का यह एक बिलकुल असाधारण रिकार्ड है। कम आयु मे हुई उनकी नियुक्ति की चर्चा बहुधा हमारे परिवार मे प्रशसात्मक दृष्टान्त के रूप मे की जाती थी। प्राय मेरे पिताजी मुझे और मेरे भाई को याद दिलाते थे कि जिस अवस्था मे हम लोग कालेज मे पढते थे और हमे लोग केवल बालक और विद्यार्थी समझते थे, वे केवल १३ वर्ष और ९ महीने की उम्र मे जीवन-क्षेत्र मे प्रवेश कर चुके थे और वकील की गुरुतर जिम्मेदारियो का वहन करना प्रारम्भ कर दिया था। निस्सदेह ऐसे महापुरुष के सामने हम अपने आपको सदा बहुत छोटा और नाचीज समझते थे।

पिताजी के सेवा-काल के ७० वर्षो मे से ५० वर्ष सक्रिय सेवा के थे। रियासत मे वह लगभग हर तरह के ओहदे पर रहे। मजिस्ट्रेट, दीवानी जज, चुगी-अफसर, सेटिलमेन्ट-अफसर, जिला अफसर, मिनिस्टर के पर्सनल असिस्टटी के पदो पर रहे और अन्त मे उन्होने रेवेन्यू-सेक्रेटरी की हैसियत से स्टेट कौसिल के सदस्य रहकर अपना कार्य समाप्त किया। सबके मतानुसार उन्होने अपने प्रत्येक पद का कार्य-विशेष योग्यता के साथ किया। निस्सदेह उनकी प्रतिभा असाधारण थी। परिस्थिति के कारण उनकी किताबी शिक्षा कम थी, परन्तु अपने दीर्घ जीवन मे अपनी शिक्षा की वृद्धि निरन्तर करते रहे। फारसी की उन्होने काफी अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी और उर्दू की उनकी शैली तो बडी ही सरल, साहित्यिक तथा गम्भीर थी। वह बहुत ही प्रवीण लेखक थे और उनकी सरकारी खरीते

की इबारत पाण्डित्यपूर्ण होती थी। विविध विषयो की उनकी जानकारी विस्तृत थी। उन्होने ७० वर्ष के अपने सक्रिय जीवन मे उर्दू दैनिक अखबार का नियमित रूप से पढना कभी नही छोडा। अगरेजी वह नही जानते थे, परदेश और विदेश की घटनाचक्र-सबधी अपनी जानकारी की भूख वह उर्दू के दैनिक पत्र से ही पूरी कर लिया करते थे।

१९२५ के लगभग, जब मेरे छोटे भाई ने रेवेन्यू-सेक्रेटरी का कार्य-भार सम्हाला, जावरा के नवाब साहब ने पिताजी का पूरा मासिक वेतन पेशन के रूप मे बाधकर उन्हे अवकाश दे दिया। कहने को वह अब नौकरी के बन्धन से आजाद हो गए थे, पर उनका और नवाब साहब का निजी सम्बन्ध कुछ इस प्रकार का था कि अपनी मृत्यु तक वह बराबर उनकी नौकरी मे भी रहे और उससे बाहर भी। नवाब इफ्तिखार अली का जन्म १८८३ मे हुआ और वह मुझसे चार साल बडे थे। नवाब साहब के घराने से काटजू-परिवार का सम्बन्ध कुछ विचित्र-सा था। नौकरी की दृष्टि से अधीनता होने पर भी दोनो के परिवार मे पारस्परिक मैत्री थी। १८७५ मे जब पिताजी ने रियासत की नौकरी शुरू की, उस समय नवाब इस्माइल खा गद्दी पर थे। १८९५ मे उनका देहान्त हो गया और उनके स्थान पर नवाब इफ्तिखार अली गद्दी पर बैठे। इफ्तिखार की नाबालगी मे उनके मामा यारमोहम्मद खा ने, जो मिनिस्टर थे, रीजन्ट का भी काम किया। १९०५ मे नवाब इफ्तिखार अली खा को पूरे अधिकार मिल गए और दो वर्ष बाद यारमोहम्मद खा का देहान्त हो जाने पर राज-काज की पूरी जिम्मेदारी उन्ही पर आ पडी।

पिताजी ने इफ्तिखार को बचपन से बडे होते देखा था और उन्हे बहुत प्यार करते थे। वह भी उन्हे इज्जत और प्रेम की निगाह से देखते और अपने आपको मेरा बडा भाई कहते थे। मेरा पूरा विश्वास है कि अगर कभी पिताजी के सामने नवाब साहब और मुझमे से किसी एक को चुनने का प्रश्न आता तो वह नवाब साहब के लिए मुझे त्यागने मे कभी नही झिझकते, क्योकि नवाब साहब को वे मुझसे भी अधिक चाहते थे। नवाब इफ्तिखार-

अली ने भी उन्हे ज्यादा-से-ज्यादा इज्जत दी । जहा तक रियासती मामलो का सम्बन्ध था, यारमोहम्मद खा की मृत्यु के बाद पिताजी का महत्व और प्रभाव बहुत अधिक बढ गया। उनकी तनख्वाह भी १५०) से ३००) मासिक हो गई। पर तनख्वाह के अतिरिक्त नवाब साहब उनका जितना सम्मान और लिहाज करते थे, वह कहा नही जा सकता। पिताजी नौकरी से अलग हो चुके थे और जावरा छोडने मे पूरे स्वतत्र थे। सर्दियो मे प्राय वह इलाहाबाद आकर मेरे साथ रहा करते थे, पर उनकी अनुपस्थिति नवाब साहब को सह्य न थी। उनके बिना नवाब साहब को बडी उदासी और अकेलापन अनुभव होता था और कहते भी थे—"पडितजी, जबतक आप जावरा मे रहते है, मै खुश और अपने को बहुत महफूज समझता हूँ। पर आपकी गैरहाजिरी मे बडा परेशान-सा हो जाता हूँ।" १९३६ की सर्दियों मे जब पिताजी अपने कार्यक्रम के अनुसार मेरे पास आने के लिए नवाब साहब की अनुमति लेने गए तो नवाब साहब ने कहा—"पडितजी, आप शौक से जा सकते हैं, मगर जरा लौटने मे जल्दी कीजिएगा, क्योकि आपकी गैरहाजिरी मे मै बडा दुखी हो जाता हूँ।" इस बात का पिताजी के मन पर कुछ ऐसा गहरा असर हुआ कि उन्होने भविष्य मे जावरा कभी न छोडने का निश्चय कर लिया और जीवन के शेष ९ वर्षो तक वह फिर कभी बाहर नही गए।

इसका यह मतलब नही कि वह नवाब साहब से प्रतिदिन मिला करते थे। सप्ताह मे केवल एक बार नवाब साहब के महल पर जाते थे। कभी-कभी यह भी नही हो पाता था। पर नवाब साहब का भेजा हुआ एक चपरासी रोज आकर पिताजी की कुशल-क्षेम पूछ जाता था और नवाब साहब को जाकर बता देता था। अगर कभी पिताजी का स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो नवाब साहब को बडी चिन्ता हो जाती थी। ऐसे मौके पर दिन मे कई बार आदमी भेज कर वह पिताजी की तबीयत का हाल पुछवाते, अपना डाक्टर भेजते और खुद भी देखने चले आते थे। जब फरवरी, १९४५ में पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तो नवाब साहब ने ज़ाहिर किया कि चूकि पडितजी

के बडे लडके वह स्वय है, अत: लोकाचार के लिए मिलने वाले लोग मेरे पास न आकर उन्ही के पास जाय ।

उनमे और पिताजी मे पत्र-व्यवहार भी खूब होता था । पिताजी को लिखे गये नवाब साहब के पत्र पितृ-भक्ति और स्नेह से ओत-प्रोत है । जीवन के अन्तिम समय तक जब कभी नवाब साहब के सामने कोई अहम मसला पेश होता या कोई महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेज तैयार कराना होता तो पिताजी को सलाह और मदद के लिए जरूर बुलाया जाता ।

व्यक्ति और शासक की हैसियत से जहाँ नवाब इफ्तिखार अली में छोटी-बडी कई कमजोरिया थी, वहा एक बहुत बडा गुण यह था कि वह सरकारी भ्रष्टाचार को बहुत नापसन्द करते थे। मेरे ख्याल से पिताजी की ओर उनके आकृष्ट होने का सबसे बडा आधार यही था कि पिताजी किसी भी हालत मे और किसी भी कीमत पर खरीदे नही जा सकते थे । उन दिनो जब कि सरकारी घूसखोरी के विरुद्ध जनमत इतना प्रबल नही था, पिताजी की सचाई, ईमानदारी और सच्चरित्रता ध्रुवतारे की तरह मानो अपना अलग ही महत्व रखती थी। उनकी सीमित दुनिया मे भी प्रलोभनों की कमी न थी और उनके अवसर भी आते रहते थे । पर वह कभी भी पिताजी को विचलित नही कर सके और उनकी तूफानी हिलोरो के बीच भी पिताजी पवित्रता की चट्टान की भाति अडिग बने रहे । अपने वेतन के सिवा, जो कई वर्षो-तक काफी कम था, उन्होने कभी भी एक पाई नही छुई । एक बार उन्होनें मुझे बडे वेदनापूर्ण स्वर मे वताया कि जब वह लगभग २०-२२ वर्ष के थे, तो उन्होने किसी से दो छोटी-छोटी रकमे, जो मेरे ख्याल मे शायद कुल २००) से ज्यादा नही थी, घूस मे ली थी । पर इसके लिए उन्हे जीवन भर बडा क्षोभ रहा और इसका जब भी उन्हे ध्यान आता था, वह दुखी हो जाते थे । इस मामले मे वह इतने कडे थे कि हमारे घर मे कभी भी सरकारी स्टेशनरी, कागज-पेन्सिल वगैरह खानगी काम मे नही लाये गए ।

ऐसे खरेपन और ईमानदारी के लिए सभी पिताजी की बडी इज्जत करते थे और वह भी अपने मन मे इस बात को खूब समझते थे। उनके अनेक गुणो मे शायद नम्रता शामिल नही थी। इसलिए अपनी ईमानदारी पर उन्हे अभिमान था, और इसे वह अक्सर अपने दोस्तो, मातहतो और सहयोगियो के सामने मिसाल के तौर पर रखते भी थे। इस दृढता ने उनके व्यक्तित्व और स्वाभिमान की भावना को काफी ऊचा उठाया। वह भावुक भी काफी थे। एक बार मिनिस्टर यारमोहम्मद खा ने जरा झल्ला कर उन्हे लिख दिया कि उनसे उन्हे उतनी मदद नही मिल रही जितनी कि उन्होने आशा की थी, तो पिताजी ने बिना कुछ भी आगा-पीछा सोचे बडे गर्व के साथ वही यह कह कर इस्तीफा दे दिया कि मै तो पूरी मेहनत करता हूँ; पर अगर मिनिस्टर साहब का यह ख्याल है कि मै उन्हे पूरी मदद नही दे रहा हूँ, तो मेरा रियासत की नौकरी मे रहना बेकार है। ऐसा करना पिताजी के लिए कम साहस की बात नही थी, क्योकि हमारा परिवार काफी बडा था और बराबर बढ रहा था। यदि पिताजी का इस्तीफा मजूर हो गया होता, तो वह बडे सकट मे पडते। मिनिस्टर साहब शायद भूल गए थे कि वे किससे पेश आ रहे है। पर शीघ्र ही उनको अपनी भूल मालूम हुई और उन्होने पिताजी को मैत्रीपूर्ण, बल्कि कहना चाहिए भ्रातृभावपूर्ण, पत्र लिखकर इतने अधिक भावुक होने के लिए उलाहना दिया। मामला यही खत्म हो गया। मुझे इस बात मे तनिक भी सन्देह नही कि पिताजी ने अपनी मिसाल और ताडना से न सिर्फ अपने बच्चो को, बल्कि अपने समय के प्रभाव मे आने वाले अन्य सभी व्यक्तियो को नेकी के सीधे रास्ते पर चलाया।

उन्हे विकास के विशेष अवसर नही मिले थे और उनका कार्य एक छोटी-सी रियासत तक ही सीमित था। अधिक अनुकूल परिस्थितियों मे उन-जैसी व्यापक प्रतिभा और चरित्र वाला व्यक्ति काफी ऊचा उठता, ऐसा वह भी समझते और कहा भी करते थे। घर मे और बाहर तथा नवाब साहब के महल मे लगभग हर विषय मे वह कुछ-न-कुछ मत रखते थे और

दृढता के साथ उसे व्यक्त भी करते थे। डा० जॉन्सन की तरह वह भी प्रतिवाद करने को अधीर रहते थे। मूर्खो को सहन करना उनके लिए सम्भव नही था, और उनके मुह पर भी कह देते थे कि उनको वह क्या समझते है। पत्र-पत्रिकाओ के अपने शौक के कारण देश-देश की गति-विधि से उनकी इतनी जानकारी हो गई थी कि वह सभी मसलो पर—चाहे वे राजनीति के महत्वपूर्ण प्रश्न हो, चाहे और कुछ जरूरी या गैर-जरूरी—अपना मत बडे विश्वासपूर्वक व्यक्त करते थे। १८७५ मे हुई बद्रीनाथजी की असामयिक मृत्यु ने १४ वर्ष पूरे करने से पहले ही उन्हे अकेले जीवन-सघर्ष मे ढकेल दिया था और परिवार मे किसी बडे भाई की छत्र-छाया मे नियत्रण न रहने से वह आत्मनिर्भर और अपनी बात पर अडने वाले स्वभाव के हो गए थे। कोई भी काम करने को सदा प्रस्तुत रहते थे। ग्राम-सुधार-योजनाओ मे उनकी विशेष रुचि थी। उन्होने मकानो के निर्माण की देख-रेख की, बाग-बगीचे लगवाए, डेरी फार्म खुलवाए और मानो दुनिया की हर बात के बारे मे उनकी कुछ-न-कुछ जानकारी थी। उनके इस स्वभाव की हमारे घर मे बडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई, खासतौर पर माताजी और बच्चो पर।

सन् १८६८ मे, जब पिताजी ७ साल के थे, तब उनका विवाह उनसे कोई २ वर्ष से भी अधिक बडी लडकी के साथ हुआ था। थोडे ही वर्षो मे वह एक ऐसी स्त्री सिद्ध हो गई, जो बुद्धि और चरित्र-बल मे पिताजी से बढ-चढकर थी। उन्होने जो कुछ पढा-सीखा, अपने-आप ही, और पिताजी के मुकाबले मे उनकी बौद्धिक भूख और ज्ञान-पिपासा कही अधिक थी। जब मै सिर्फ आठ महीने का था, मेरी दादी का स्वर्ग-वास हो गया। फिर तो हमारे परिवार मे मा, पिताजी और हम बच्चे ही रह गये। पिताजी की तरह मा को भी पारिवारिक मामलो मे सलाह-मशविरा देने कोई बडी-बूढी नही थी। मुझे ऐसा लगता है कि पिताजी मा की बौद्धिक उच्चता को जान गए थे और यह भी महसूस करने लगे थे कि ज्ञान और तर्क-शक्ति मे वह उनकी बराबरी नही कर सकते। अत.

कभी-कभी वह पति के जन्मसिद्ध अधिकार से उन्हे दबाने की चेष्टा करते थे। मै जब थोडा बडा हुआ, तो मैंने देखा कि कभी-कभी पिताजी के कटु वचनो से मा बडी दुखित हो जाती थी। ऐसा लगता कि दोनो मे ही हास्यरस का अभाव है। दोनो ही बेहद सजीदा रहा करते थे। पिताजी बाहर भले ही खुलकर बात कर लेते हो, पर जबसे मैंने होश सम्हाला, घर मे मैंने उन्हे कभी भी कोमल और मृदु रूप मे नही देखा। इस स्वभाव के कारण अक्सर दोनो मे कहा-सुनी और झगडे हो जाते थे। अन्य बातो के साथ मा का यह दृढ विश्वास था कि नारी को हर प्रकार से पुरुष के पूर्णतया समान होने का दैवी अधिकार है। वे यह भी कभी स्वीकार करने को तैयार नही थी कि पति का काम हुक्म देना और पत्नी का उसे बजा लाना भर है। उनका मत था कि जीवन-सग्राम मे पति-पत्नी दोनो साथी और सहयोगी है।

पिताजी का मत ठीक इसके विपरीत था और यह आभास होते हुए भी कि उनके पास कोई उपयुक्त तर्क नही है, उनकी चेष्टा रहती थी कि घर मे उन्ही का हुक्म चले। १८९५ मे मेरे नानाजी का स्वर्गवास हो गया और अब माताजी के लिए अपने घर के सिवा और कोई स्थान नही रहा।

स्वभावो की ऐसी भिन्नता होने पर भी मा ने जैसे-तैसे निभाया और एक बार तो उन्होने मुझे यह रहस्य भी बताया कि क्यो वह पिताजी की कठोरता और अविचार को भी सहन कर लेती हैं। उन्होने कहा कि कोई भी स्त्री पति का पर-स्त्रीगमन कभी भी क्षमा नही कर सकती। किन्तु यदि पति उसके प्रति वफादार है, तो पत्नी की दृष्टि में इस एक गुण से सारे अवगुण ढक जाते है। इस दृष्टि से पिताजी एक आदर्श पति थे। न उनके चरित्र मे कोई खोट थी और न उनमे कोई दुर्व्यसन ही था। घर की पूरी मालकिन मा थी। पिताजी की पूरी तनख्वाह उन्ही के हाथ मे पहुँचती थी। फिर वह उसे जैसे उचित समझे, खर्च करे। जब भी मा को पिताजी से कोई शिकायत होती या उनके मन को ठेस लगती,

तब वह उनके गुणो का ही ख्याल करती और मन-ही-मन ऐसा पति पाने के लिए अपना भाग्य सराहने लगती। इस प्रकार पिताजी की कठोरता को वह सहज ही मे क्षमा कर देती थी। यह केवल दोनो के स्वभावो की भिन्नता थी, जिसके कारण समय-समय पर कहा-सुनी हो जाया करती थी, वरना पिताजी बडे प्रेमल और वफादार पति थे। जब १९०८ मे मैने सयुक्त प्रात मे अपनी वकालत शुरू की तो मा और पिताजी पर उसकी बडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई। मा उस समय ५० वर्ष की थी और जब उन्हे ज्ञात हुआ कि अब उनके अपने लडके का एक और ऐसा घर हो गया है, जहा वह अधिकारपूर्वक जा सकती है, तो उनकी स्वतत्रता की भावना और भी प्रबल हो गई। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, पिताजी भी अधिक नरम होते गए। मेरे विचार से परिवार मे एक नया घर स्थापित हो जाने से जो परिवर्तन हुआ, उसके महत्व को उन्होने भी समझा और उसके बाद मा के साथ होने वाली बातचीत मे वह इस बात का ध्यान रखने लगे कि अब वह हमेशा अपनी ही बात नही मनवा सकेगे।

माता-पिता की कठोर सजीदगी का उनकी सतान के मस्तिष्क पर बडा बुरा प्रभाव पडा। दोनो मे से कोई भी मृदु और हँसमुख स्वभाव का न था। मा को घर के काम-काज से ही फुरसत न थी। खाना बनाने के अलावा सिलाई और घर का सारा काम उन्ही को करना पडता था। पिताजी का अपना अलग कार्यक्रम था। वह दिन को ११ बजे दफ्तर गए सायकाल ६ बजे लौटते थे। फिर कोई आध घटे बाद ही खाना वगैरह खाकर मिनिस्टर साहब के बंगले पर मिलने-जुलने और गप-शप के लिए चले जाते थे और रात को ११ बजे बाद लौटते थे, जब कि सब बच्चे सो जाते थे। हमसे उनकी बहुत कम बात होती थी और खुल कर तो कभी बात हुई ही नही। इस तरह मा-बाप के स्नेह से एक तरह से मै वचित-सा ही रहा। उन दिनो हिन्दू-सयुक्त-परिवारो मे मा-बाप सबके सामने अपने बच्चो से प्रेम-प्रदर्शन नही करते थे। इस कमी की पूर्ति दादा-दादी कर देते थे, जिनके अत्यधिक लाड-प्यार से कभी-कभी बच्चे बिगड़

भी जाते हैं । पर दुर्भाग्य से मेरे दादा-दादी भी न थे । अत बचपन में मैंने पैतृक प्रेम का कभी अनुभव ही नही किया । अकेला मैं ही इस दुर्भाग्य का शिकार हुआ होऊँ, सो नही, मेरे छोटे भाई और बहनो को भी यद्यपि कुछ कम अशो मे, यही दुखद अनुभव हुआ । मुझे और मेरी बहन को पिताजी की उपेक्षा का पूरा भार वहन करना पडा और हम सर्वदा उनसे भयभीत रहे । वह जैसे हमारी पहुँच के बाहर थे, परन्तु अधेड होते-होते वह कुछ नरम पडे । १८९९ मे पैदा हुई मेरी सबसे छोटी बहन हममे से सबसे भाग्यशाली रही । १९०५ मे विवाह कर जब मैं अपनी पत्नी को घर लाया, तब मानो पिताजी के पितृ-प्रेम का बाध ही टूट गया । मेरी पत्नी की अवस्था तब सिर्फ १४ वर्ष की थी और हमारे घर मे पाव रखने के बाद ही से पिताजी ने उसपर अपना सारा प्रेम उडेल दिया । वह उसे नित नए-नए उपहार लाकर देने लगे, उसे उर्दू पढाना शुरू किया घटो उसके साथ गप-शप करते तथा ताश खेला करते थे । इस प्रकार शायद पहली बार पिताजी ने परिवार मे हँसना और जी बहलाना सीखा ।

काश्मीरी पडितो की परम्परा के अनुसार शादी के बाद जब पत्नी हमारे घर मे आई तो उसे नया नाम दिया गया 'लक्ष्मीरानी' । पिताजी के बहुत से पोते-नाती थे । वे उन सबको प्यार करते थे । सबसे अधिक प्यार लक्ष्मीरानी के बच्चो को ही करते थे । १९१० मे लक्ष्मीरानी के सन्तान उत्पन्न हुई । पिताजी का उसके साथ खेलना और हँसना देखने-योग्य होता था । उन्हे ऐसा करते देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी । हिन्दू-परिवार मे बहुओ को जितना प्यार और सम्मान मिलता है, उतना लक्ष्मीरानी को हमारे घर मे भी मिला । पर शीघ्र ही उसके गुणो के कारण पिताजी अपनी लडकियो से भी अधिक उसे चाहने लगे । १९४४ मे जब उसका देहान्त हुआ तो पिताजी के हृदय को भीषण वेदना हुई ओर इसके तीन महीने बाद उन्होने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली । लक्ष्मीरानी की बुद्धिमत्ता, सरल और मीठे स्वभाव , शान्त और स्थिर

मत, चुपचाप योग्यतापूर्वक घर-गृहस्थी की सम्हाल और धैर्य तथा सहिष्णुतापूर्वक दुख-कष्ट सहने की वृत्ति के कारण पिताजी उसका बडा आदर करते थे। हमारे परिवार के लिए तो वह साक्षात् लक्ष्मी ही थी, क्योकि वह अपने साथ सुख और सौभाग्य लेकर आई थी।

मेरा जावरा के अपने घर से चला आना पिताजो को अच्छा नही लगा। हम लोगो की खान्दानी जड अब वहा के सिवा और कही न थी। अत पिताजी चाहते थे कि मै भी अपने पुरखो की परम्परा के अनुसार वही रियासती नौकरी मे रहूँ। १९०७ मे जब मैंने एल-एल० बी० पास किया तो उन्होने मेरी जानकारी के बिना ही मिनिस्टर साहब को मेरे रियासत मे नौकरी करने की बात लिख दी। पर मिनिस्टर साहब ने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया और पिताजी से कहा, "कैलास-नाथ अभी बहुत छोटा है (तब मै २० वर्ष का भी न था)। रियासत मे किसी पद पर नियुक्त किये जाने से पहले उसे कही अनुभव प्राप्त कर लेने दो।" इससे पिताजो को न केवल असतोष ही हुआ, बल्कि झुझलाहट भी। उन्होने जवाब मे मिनिस्टर साहब को लिख भेजा कि इस बारे मे फैसला करना तो उन्ही के हाथ की बात है, पर पिजरे से पहली बार बाहर निकलने वाला पक्षी पता नही, फिर कब लौटे या न लौटे, उसी तरह कैलास-नाथ यदि एक बार जावरा से बाहर चला गया, तो फिर वह लौटे या न लौटे। इस सूक्ष्म सकेत का भी मिनिस्टर साहब पर कोई प्रभाव नही हुआ और मुझे अपने भाग्य की परीक्षा के लिए विस्तृत दुनिया मे चला आना पडा। जावरा से बाहर सभी स्थान मेरे लिए बराबर फासले और आकर्षण के थे। अकस्मात् मैंने अपनी वकालत के लिए कानपुर को चुना। जैसी कि पिताजी को आशका थी, फिर कभी मै जावरा नही लौटा।

मेरे कानपुर और फिर इलाहाबाद के घरो ने पिताजी के क्षेत्र को भी काफी व्यापक बना दिया। इसका मतलब यह नही कि उनकी जावरा से ममता कुछ कम हो गई हो, पर सर्दियो के कुछ महीने हम सबके साथ सयुक्त प्रान्त मे बिताना उनको अच्छा लगने लगा। अब वह मेरे साथ काफी

खुलकर और आराम से रहने लगे । पर उनकी आत्मनिर्भरता और दूसरो पर बोझ न डालने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि वह जबतक हमारे साथ रहते, हमारे कामो मे अधिकाधिक हाथ बँटाते । मकान बनाने, मरम्मत की देखभाल करने, बगीचे की रूपरेखा आदि बनाने के सिवा वह हम सबकी देखभाल, नेक सलाह और पथप्रदर्शन आदि से भी बडी मदद किया करते । इतना सब करने पर भी वह अपने आपको इस नए वातावरण के अनुकूल नही बना सके। वह पुराने विचारो के थे और विचारो की आजादी और जनतत्र की बढती हुई भावना के साथ उनको कोई सहानुभूति नही थी । जन-साधारण की बुद्धि, राजनीतिमत्ता और अनुभव को वह विशेष महत्व नही देते थे । उनका यह दृढ विश्वास था कि दूसरो को अपनी भलाई खुद करने के लिए छोड देने की अपेक्षा उनका भला हमे ही करना चाहिए । उनका ख्याल था कि जनता की भलाई किसमे है, इसका वह स्वय ही अच्छा निर्णय कर सकते है । इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होने जावरा मे ५० वर्ष तक रियासत की सरकार द्वारा जनताकी भलाई के कई तरह के काम किए थे। पर जब वह प० मोतीलाल नेहरू और प० मदनमोहन मालवीय के नगर प्रयागराज मे आए तो अपने-आपको अकेला महसूस करने लगे । एक तो उनका अगरेजी न जानना बहुत बडी बाधा साबित हुई । दूसरे उनमे अहभाव की प्रबलता थी ।

माताजी कहा करती थी कि उनमे रजोगुण का प्राबल्य है, जिससे वह मनन और शाति का जीवन नही बिता सकते थे । वह निरन्तर कुछ-न-कुछ करते रहना चाहते थे। यद्यपि वह जब इलाहाबाद आते थे तो उनके इर्द-गिर्द ऐसे कई लोग जमा हो जाते थे, जो उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, फिर भी उन्हे सदा यह ध्यान बना रहता था कि यहा चाहे वह कुछ भी करे, पर लोग तो उन्हे डा० काटजू के पिता के रूप मे ही जानेगे । यह स्थिति उन्हे स्वीकार न थी। जावरा मे इससे बिलकुल उल्टी बात थी। वहा लोग उनकी, उनके गुणो और व्यक्तित्व के कारण इज्जत करते थे । जावरा मे शायद ही कोई ऐसा घराना हो, छोटा या बडा, जिससे उनकी पीढियो

की मैत्री और घनिष्ठ परिचय न हो और उनमे से हरएक के वह प्रिय 'पडितजी' थे ।

अपने अन्तिम समय मे पिताजी जावरा मे एक सस्था-सी बन गए थे। सभी श्रेणियो और वर्गो के लोगो को उनपर गर्व था और सभी उन्हे अपना सलाहकार और हितैषी समझते थे । वह जहा भी जाते, लोग उन्हे सिर-आखो पर उठा लेते थे। उन्होने अनेक हिन्दू और मुसलमान लडकियो को गोद ले रखा था और इस तरह गोद लिए हुए बच्चो से हुए उनके पोते-पोतियो और पडपोतो की सख्या बेशुमार थी । गावो और शहरो के लोग निरन्तर उनके दर्शन करने को आते रहते थे। मेरा छोटा भाई हमेशा पिताजी के साथ रहा, पर वह सदा एकान्तवासी ही रहे । उनकी सेवा के लिए एक पुराना नौकर था, जो हमारे परिवार का ही एक सदस्य बन चुका था । उसकी सेवा के कारण न सिर्फ पिताजी उसी का खयाल रखते थे, बल्कि स्त्री-बच्चो का भी । बच्चे तो खेलने के लिए उनको बराबर घेरे रहते थे। अपने सगे भाइयो के बच्चे और पोते-पोतियो को वह अपने ही बच्चो की तरह प्यार करते थे । वह भी उन्हे परिवार का सबसे बडा सदस्य और अपना सबसे बडा शुभचिन्तक समझते थे । उनके और अन्य रिश्तेदारो के लिए जावरा इसी कारण एक तीर्थस्थान-सा बन गया और पिताजी की विशाल-हृदयता भी ऐसी थी कि वह अपने पास आनेवाले सभी को दीर्घ अनुभव और बुद्धिमत्ता का कुछ-न-कुछ अमूल्य प्रसाद देते थे ।

अन्तिम वर्षो मे तीन बातो का उन्हे विशेष ध्यान था । पहली तो यह कि वह एकदम स्वतत्र ही रहे और किसी का—यहा तक कि अपनी सन्तान का भी—तनिक-सा एहसान न ले । हरएक को वह कुछ-न-कुछ देते, पर लेते कभी किसी से कुछ नही थे । दूसरी, उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि मृत्यु-पर्यन्त उनके हाथ-पाव अपना कार्य करते रहे और उन्हे किसी की सेवा-शुश्रूषा का आभारी न होना पडे । तीसरी यह कि उनका शरीरान्त अपनी पैतृक भूमि जावरा मे ही हो। एक बार मुझे एक कच्ची कोठरी दिखाकर बडे गम्भीर होकर उन्होने कहा, "मेरी जडे तो यहा है । बुढापे मे मैं इस

स्थान को कैसे छोड दू ?" उनकी ये तीनो आकाक्षाएँ पूरी हुईं ।

हम लोग अपनी घर-गृहस्थी बसा चुके थे। पिताजी पर अब परिवार का कोई बोझ नही रह गया था, अत पेन्शन के रूप मे उन्हे जो ३००) वेतन मिलता था, उससे वह बडी प्रसन्नता के साथ अनेक गरीब परिवारो की सहायता किया करते थे। रही स्वास्थ्य की बात, सो उन-जैसी अपनी देख-भाल शायद ही कोई रखता हो। वह कठोर नियमो का पालन करते थे। नपा-तुला खाना खाते, नपा और नियमित व्यायाम करते, निश्चित समय सोते और महीने की पहली तारीख को अपना वजन लेते। अगर उसमे थोडा-सा भी फर्क प्रतीत होता, तो वह उसे ठीक करने का पूरा प्रयत्न करते। कान, आख, मुह, दात और जोड़ो के लिए घरेलू नुस्खो की बनाई हुई कोई-न कोई दवा उनके पास जरूर रहती, जिसका नियमित रूप से वह प्रयोग करते थे। कभी-कभी मै उनकी इस जरूरत से ज्यादा शरीर-रक्षा पर टीका-टिप्पणी करता। वह कहते, "तुम्हे नही मालूम कि तन्दुरुस्ती कितनी बडी देन है।" कदाचित् इसीका परिणाम था कि ८५ वर्ष की आयु मे भी उनके सब-के-सब दात कायम थे, आखो की रोशनी अच्छी थी और एक पोस्टकार्ड पर वे ३२ सतरे लिख सकते थे। उनका रहन-सहन बिलकुल पुराने ढग का था। माताजी के स्वर्गवास के बाद वह अपना भोजन स्वय बनाते और दूसरे किसी के हाथ का बना खाना कभी नही खाते थे। मृत्यु-पर्यन्त पूर्णतया स्वस्थ रहने की आकाक्षा अक्षरश पूरी हुई। फरवरी १९४५ मे जब वह पूर्णतया स्वस्थ नजर आते थे, एक दिन भोजन के बाद अचानक उनको मूर्च्छा आ गई और वह बेहोश हो गए। उसके बाद वह फिर होश मे नही आए। पाच दिन बाद सदा के लिए चल बसे। इस प्रकार दुरुस्त होश-हवास मे वह शरीर से कभी किसी के मोहताज नही हुए।

२८ फरवरी, १९४५ को आधी रात के करीब उनका अन्तकाल आया। पर इसके आने से पहले न-जाने कैसे अचानक उन्होने पूरी आखे खोली और चारो ओर खडे हम सबो को देखा—मानो हमसे विदा ले रहे हो—और फिर स्वर्ग सिधार गए। जावरा के लोगो ने ऐसा शोक मनाया, मानो

अकेले मेरे ही पिता का नही, उनमे से हरएक के पिता का वियोग हुआ हो। उनकी अरथी के साथ रियासत की सारी फौज, पुलिस, नवाब साहब के कुनबे के लोग और सभी श्रेणियो की जनता बहुत बडी सख्या मे श्मशान तक गई। पडितजी चल बसे थे और सब समझने लगे थे कि उनके साथ ही एक युग भी हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

ससार मे हर सतान अपने माता-पिता की ऋणी होती है। पर मुझपर यह अतिरिक्त ऋण है कि मेरी शिक्षा पर खर्च की गई एक-एक पाई खरी और कडी मेहनत की कमाई थी। अब महसूस करता हूँ, पहले शायद नही करता था कि लाहौर और इलाहाबाद मे मुझे पढाने के लिए मे रे मा-बाप को अपनी बहुत-सी सुविधाओ को त्यागना पडा था। उनके लिए यह एक गर्व और गौरव की बात थी। मेरी शिक्षा के प्रश्न पर उनके सामने परिवार मे और कोई मिसाल न थी। मुझे उच्चतम शिक्षा मिले, इसके लिए बडी-से-बडी तकलीफे और असुविधा सहन करने मे उन्हे कभी तनिक-सी हिचक नही हुई। मेरा यह दृढ विश्वास है कि मुझे जीवन मे जो कुछ सफलता मिली ह उसका एकमात्र कारण पिताजी की खरी कमाई ही है। जब मै १९१२ मे एल-एल० एम० के इम्तहान मे बैठा और असफल हो गया, तो मुझे ख्याल आया कि मेरी असफलता का कारण शायद यह हो कि इम्तहान की पूरी फीस मैने अपने पास से ही दी थी। अत दूसरे साल जब मै फिर उसी परीक्षा मे बैठा, तो इम्तहान की फीस के लिए खास तौर से पिताजी से १००) रुपये मगवाए, ताकि मै सचाई के साथ कह सकू कि मेरी पूरी पढाई का खर्च मेरे पिताजी ने ही दिया। उन्होने वैसा ही किया और मै पास हो गया। वह हमारे लिए एक ऐसे वटवृक्ष के समान थे, जिसकी छाया मृत्यु-पर्यन्त हम सबपर रही।

## ३ :

# वाह री बेटी !

कहावत है, जो सकट मे साथ दे वही सच्चा साथी और मित्र है। इस दृष्टि से जब मै देखता हू तो मुझे स्त्री-जाति का स्थान सर्वोच्च जान पडता है। अपने वकालत-काल मे मैने जेल मे पडे आत्मीयो और स्नेहियो के लिए माताओ, बहनो और पत्नियो के अपूर्व त्याग और प्रेम का साक्षात प्रतिरूप देखा है। जिन देवियो ने अपने जीवन मे कभी दहलीज से बाहर पॉव तक न रक्खा था, वह अपने स्नेही आत्मीयो की रक्षा के सबध मे कई-कई बार मेरे पास आई। युवा माताए गोदी के बच्चो के साथ दूर-दूर के सफर करती थी और अपने पतियो को बचाने के लिए एक वकील की मानव-भावना को उत्प्रेरित करती थी। जब मै न्यायालय मे बहस करता था तो अक्सर मुझे उन विनती-भरी ऑखो का ख्याल आ जाता, जिन्हे मै अपने दफ्तर मे छोड आता था।

भारतीय स्त्रियो के बारे मे यह ख्याल करना अत्यधिक भूल है कि अपने घरो मे उनकी दासियो की-सी स्थिति है और वे अपने पतियो की इच्छा-पूर्ति की साधन-मात्र है। मेरा यह अनुभव नही है। इसके विपरीत मैने देखा है कि घरेलू क्षेत्र मे उन्हे बहुत ही प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होता है। वे अपने घरो मे शासन करती है और अपने परिवार तथा पारिवारिक सपत्तियो-सबधी प्रबध एव देखभाल मे उनका बडा हाथ होता है। वस्तुत. रिश्तेदारो मे जो मुकदमेबाजी होती है, उसमे अधिकाश की प्रेरणा परिवार की स्त्रियो की ओर से होती है और यह विद्रोही भावना माता की इस भावना से उत्पन्न होती है कि परिवार की जायदाद मे से उसके बच्चो को जायज हिस्सा मिल सके।

पत्नी का खयाल होता है कि उसका पति पुरातन परपराओ के आगे झुक रहा है और अपने भाइयो तथा बहनो का पक्षपात कर रहा है। इस पक्षपात और समर्पण की सीमा यहॉ तक बढ जाती है कि वह अपने बच्चो के

स्वार्थ तक की बलि करने कौ तैयार हो जाता है , लेकिन उसकी पत्नी तो ऐसे किन्ही पुराने बधनो एव परपराओ मे नही बधी होती । वह अपने बच्चो के हित के लिए लडती है और स्वभावत उसका पति उसके प्रभाव को आखिरकार स्वीकार कर लेता है और जैसा वह चाहती है, करता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे अनेक ऐसे अनुभव हुए है और उनमे एक तो बहुत ही मनोरजक है।

एक दिन सबेरे मै अपने दफ्तर मे बैठा था। मेरे चपरासी ने सूचना दी कि एक देवी आपसे कानूनी सलाह लेने के लिए मिलना चाहती है। भद्र-परिवार की होने के कारण मैंने उसे पास के कमरे मे बैठाने को कहा और चद मिनटो बाद मै वहा गया। मैंने देखा कि साफ-सुथरे वस्त्र पहने एक हिन्दू युवती बैठी है । वह बडी नम्र और सहज स्वभाव की थी । उसने खडे होकर मुझे नमस्कार किया और सामान्य आचार के उपरात मैंने पूछा कि मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। इसपर उसने बताया कि उसके पति मिर्जापुर के एक स्कूल मे अध्यापक है। उनका वेतन ९० रु० मासिक है और उनके दो बच्चे है। आगे उसने कहा, "मेरे पति का घर पास ही के जिले मे है। वे तीन भाई है और उनकी बहुत बडी जमीदारी और एक पुश्तैनी मकान है। इस जायदाद से अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है; लेकिन दो भाई उस सारी आय का इस्तेमाल कर लेते है। वे उसमे से मेरे पति को हिस्सा नही देते ।

"डाक्टर साहब, आप मेरी इस बात से सहमत होगे कि हम इस बात की उपेक्षा नही कर सकते । मैंने अपने पति को समझाया था कि हमे भी अपने परिवार का पालन करना है और हमे इस ढग से अपनी आय के हिस्से को दूसरो को नही उडाने देना चाहिए। सो मैंने उन्हे राय दी कि जायदाद का बटवारा कर लेना होगा । यह सोचकर हम दोनो अपने पुश्तैनी गाव मे गये और मेरे पति ने दोनो भाइयो से जायदाद और उसकी आमदनी का हिस्सा मागा। आप जानते है कि हुआ क्या ? भाइयो ने उनकी बात ही नही सुनी और वे लडने लगे । उन्होने हमारी बेइज्जती की और हमे घर

से निकल जाने को कहा। डाक्टर साहब, मै आपसे कहती हूँ, (उसका स्वर उत्तेजित हो उठा और आँखे लाल हो गई ) मै राजपूत की बेटी हूँ । अगर यह घटना मेरे मायके मे हुई होती तो लडाई हो जाती और तलवारे निकल आती । मै अपने बच्चो की सपत्ति को इस तरह किसी को भी नही हडपने दे सकती । मै तो इसके लिए लड मरती ।

"लेकिन मेरे पति बहुत ही नम्र और कोमल स्वभाव के है। जब मैने उन्हे दृढ रहने तथा अपने भाइयो के साथ व्यवहार मे सख्ती करने को कहा तो वह बोले कि यह मेरे बस का नही। वह अपने भाइयो के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे नही लड सकते। डाक्टर साहब, क्या आप समझते हैं कि उनका ऐसा करना ठीक था और क्या मेरा बच्चो के हक पर जोर देना मुनासिब नही था ?"

आवेश एव क्रोध के मारे उसकी आँखे लाल हो आई थी और उसके क्रोधी स्वभाव को देखकर आश्चर्य के साथ-साथ मेरा मन भी भर आया। इसके बाद मैने पूछा, "उसके बाद फिर क्या हुआ ?"

उसने जवाब दिया, "मेरे पति ने कहा था कि वह कुछ नही कर सकते और अगर तुम पारिवारिक सपत्ति के बटवारे पर ही ज़ोर देती हो तो अदालत के सिवा दूसरा चारा नही है। इसपर मैने कहा कि इसके लिए कानूनी सलाह लो। उन्होने जवाब दिया कि वकील लोग तो फीस मागेगे और मेरे पास पैसा है नही। भला इतनी थोडी-सी आमदनी मे से मै उनकी फीसे कैसे दे सकता हूँ ! इसपर मैने उन्हे आपसे राय लेने को कहा, जिसका जवाब उन्होने यह दिया, 'डा० काटजू तो बडे भारी वकील है। सभव है कि वह बहुत बडी फीस मांगें और हमारे लिए उतना देना एकदम असभव होगा।'

"इसपर मैने उनसे कहा कि मै खुद ही आपके यहाँ जाऊँगी, आपको अपने परिवार की सारी हालत बताऊँगी और मुझे पक्का यकीन था कि आप हमारी सहायता करेगे।" इतना कह कर वह चुप होगई। उसकी शात आखो मे उसका दृढ निश्चय झलक रहा था। मै तनिक मुस्कराया और

बोला, "तुमने मेरे पास आकर बहुत समझदारी का काम किया है । अब तो मैंने तुम्हारी सारी बात सुन ली है, इसलिए तुम बेफिक्री के साथ अपने घर जाओ । अदालते और मुकदमेबाजी स्त्रियो के काम नही। और न तुमको यह शोभा देता है। बेहतर होगा कि तुम अपने पति को मेरे पास भेज दो। मै उन्हे उचित सलाह दे दूगा। और हॉ, यह यकीन रखना कि किसी प्रकार की फीस की कोई बात नही होगी।"

इसपर जब उसने कहा कि उसके पति वहॉ मौजूद है तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने हैरानी के साथ पूछा, "कहॉ है ?"

"बाहर, फाटक पर।" उसने जवाब दिया।

"कौन-सा फाटक ?"

"आपकी कोठी के बाहर वह तागे मे बैठे है।"

मै हँसा और मैंने चपरासी से कहा कि फाटक के बाहर तागे मे बैठे महाशय को भीतर बुला लाओ। तत्काल ही पति महाशय आगए। वह बहुत ही सरल, नम्र तथा विक्षिप्त-सा था। जाहिर था कि स्थिति उसके बस की नही थी। मुकाबले मे उसकी पत्नी का व्यक्तित्व रोबीला था।

मैंने उससे कहा कि आपकी पत्नी ने मुझे सारी बात बता दी है। आप अपने पारिवारिक मामलो के विषय मे कोई चिता न करे, सब ठीक हो जायगा। मैंने मिर्जापुर के कुछ वकील-मित्रो के नाम लिये और कहा कि आप इनमे से एक के पास जाकर मेरा नाम लेना और उनसे कह देना कि वह मुकदमा दायर करने का मसविदा बना कर मेरे देखने को भेज दे। इसके बाद वे दोनो चले गए, पत्नी बहुत खुश थी और पति एकदम गभीर थे।

थोडे दिनो बाद पत्नी की ओर से मुझे एक पत्र मिला, जिसके साथ मुकदमे का मसविदा था। पत्र मे उसने अपने आपको मेरी पुत्री जाहिर किया था। मैंने मसविदा देखकर उसे लौटा दिया, लेकिन कानूनी कारंवाही की जरूरत ही नही पडी। बाद मे मुझे सूचित किया गया कि वह स्त्री अपने पति के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे गई थी और वहॉ उसने सब लोगो मे फैला दिया कि डा० काटजू ने उसे मुहबोली बेटी बना लिया है और वह

बिना फीस लिए ही जिला अदालत मे उसका मुकदमा लडेंगे। मै समझता हूँ कि दोनो भाइयो का दिमाग इससे शात होगया। जायदाद के बटवारे की माग का वह जवाब भी कोई नही दे सकते थे और इस प्रकार वे आपसी समझौता करने को सहमत होगए।

कई वर्ष बाद, मेरा खयाल है १९४० मे, मुझे एक अपरिचित स्त्री का खत मिला, जिसने मुझे पिता कहकर सबोधित किया था। एकाएक मै उसे पहचान नही सका था। खत मे लिखा था कि उसके पति का उत्तर-प्रदेश के किसी दूसरे स्थान पर तबादला हो गया है और अब उसे १२० रु० मासिक मिलते है। बच्चे दो से बढ कर चार होगए है। आगे उसने लिखा था, "यह देखते हुए कि परिवार की आय इस बढते हुए परिवार के लिए सर्वथा अपर्याप्त है, मैने अपने यत्नो द्वारा आय मे वृद्धि करने का निश्चय किया। तदनुसार मैने अपने घर पर पढना शुरू किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मैट्रिक, इटर और बी० ए० परीक्षाए पास कर ली। अब मै बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० टी० की परीक्षा पास करना चाहती हूँ। दाखिला मिल गया है और यूनिवर्सिटी के महिला होस्टल मे जगह भी मिल गई है। होस्टल का खर्च लगभग चालीस रुपये माहवार है और मेरे पति इस सारे खर्च को पूरा नही कर सकते। उन्होने एक वर्ष मेरे घर से बाहर रहने की तो मजूरी दे दी है और वह इस बीच बच्चो की भी देखभाल करेंगे, लेकिन खर्चे के बारे मे उनका कहना है कि वह अधिक-से-अधिक दस रुपये मासिक दे सकते है।" पत्र के अत मे उसने लिखा था कि बी० टी० परीक्षा पास करने और यूनिवर्सिटी होस्टल मे रह सकने के लिए आप मेरी सहायता कीजिए।

मै उस खत को बार-बार पढता रहा और मेरे मन मे उसके प्रति अधिकाधिक श्रद्धा और सम्मान उत्पन्न हुआ। मेरे मस्तिष्क मे वह पुराना दृश्य चित्रित हो उठा और अनायास ही मैने मन-ही-मन कहा, "उस जैसी बेटी या बहन का होना कितने सौभाग्य की बात है! परमात्मा उसे चिरजीवी करे!"

: ४ :

# दैनिक समस्याएं और उनका समाधान

एक बहन से एक बार हिंदू घरो की सुख-शाति को अक्सर विक्षिप्त कर देने वाले असुखद सबधो के बारे मे चर्चा हो रही थी। मेरा सुझाव था कि इस सकट का मूल कारण अक्सर स्वत्व-अधिकार की भावना होती है और यदि सबधित लोग गीता के 'मा फलेषु कदाचन' के सिद्धात पर आचरण करे तो सहज ही लाभ हो सकता है। यह दर्शन-सिद्धात हिंदू घरो की रोजमर्रा की समस्याओ का क्योकर समाधान कर सकता है, यह स्पष्ट करना इस लेख का उद्देश्य है।

प्रत्येक मानव-प्राणी मे प्रबल स्वत्वाधिकार की भावना होती है और यह जरूरी भी नही कि हम उसे अनिवार्यत बुरा ही समझे। लेकिन होता कभी-कभी यह है कि कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिष्ठित बन जाता है और उसके कारण ऐसी भक्ति और समर्पण के कार्य होने लगते है, जिनमे अपनापन का सर्वथा लोप हो जाता है। वस्तुत ऐसा आत्मत्याग दिखाई तो बहुत कम देता है, लेकिन इसका मूल तो अधिकार-भावना मे ही निहित है।

यहाँ मुझे अपने पुत्र के विषय मे एक मा की स्वत्वाधिकार भावना का ख्याल हो आता है। एक हिंदू माँ के नाते वह अनुभव करती है कि बच्चे को जन्म देकर और अगाध मातृ-स्नेह से उसका लालन-पालन करने के कारण वह उसका अनत-प्रेम पाने की अधिकारिणी है। वह यह भी ख्याल करती है कि उसे अपने पुत्र की धन-दौलत, उसकी सुख-समृद्धि, उसके घर और बाहरी जगत मे भागीदार बनने का अधिकार है। वह पुत्र पर 'अधिकार' शब्द का अत्यधिक वास्तविक अर्थो मे दावा करती है और हमारे धार्मिक उपदेश भी उसी लक्ष्य की प्रेरणा करते है। इसके बाद आती है बहू—पुत्र की पत्नी। अपने अस्तित्व के नाते वह भी अपने अधिकार का दावा करती है। उसका यह दावा अपने पति के प्रेम पर

स्वामित्वपूर्ण अधिकार का दावा होता है। वह दावा करती है कि वह कानून द्वारा, धर्म द्वारा और पुरातन परपरा द्वारा अपने पति का अग बन गई है। पति और पत्नी के मेल से ही निश्चित पूर्णता बनती है। वह घर उसका घर है, पति की सपत्ति उसकी सपत्ति है। उसकी सास अपने पुत्र द्वारा पौत्रो तक पर भी स्वत्वाधिकार का दावा करती है, और मा तथा पत्नी की स्वत्वाधिकार की भावनाओ मे सघर्ष होने के कारण हिंदू घर मे लडाई-झगडा, ईर्ष्या और कभी-कभी तो बेहद अशाति हो जाती है।

यह बात केवल माँ तक ही सीमित नही है। पिता, बहन और भाई पर भी समान रूप मे लागू होती हैं। विवाह से पूर्व इनमें हर कोई अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार, पुत्र या भाई के नाते सीमित स्वत्व-भावना का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त भाई के प्रति भाई के, बहन के प्रति भाई के तथा अन्य निकट नातेदारो के प्रति कर्त्तव्यो के विषय मे भी हमारे यहाँ धार्मिक आदेश है। स्वत्वाधिकार की इन सारी भावनाओ का परिवार मे अनधिकृत रूप से प्रवेश पा जाने वाली पत्नी की स्वत्व-भावना के साथ सघर्ष होने लगता है। स्वभावत वह एकाधिकार का दावा करती है और पति के प्रेम अथवा सम्मान मे किसी भी दूसरे व्यक्ति को शामिल नही होने देना चाहती। सभव है कि वह स्वत ही स्नेही बहू या भाभी का एक आदर्श नमूना हो; लेकिन यह सब भी उसकी आतरिक स्वेच्छा से ही चालित होगा। उसके पति के प्रेम मे किसी का अधिकार पूर्णतः विद्यमान था, यह जतलाना उसे उत्तेजित करता है और घर की शाति-भग कर देता है। वह अपने पति-प्रेम पर अपने निजी अधिकार से भिन्न किसी के दावे को सहन करने को तैयार नही होती, चाहे वह किसी भी ढग का क्यो न हो। सास-बहुओ या एक व्यक्ति की पत्नी और उसकी बहन तथा अन्य नातेदारो के बीच विद्यमान जिस अशाति की कहानिया समूचे भारत मे सुनने को मिलती है, वे मूलत पति के अभिभावको या अन्य रिश्ते-दारो की ओर से इस स्वत्व-भावना का प्रयोग करने से उत्पन्न होती है।

इन सारे सघर्षो का सही-सही इलाज, जो मुझे जान पडता है, यह है कि इस स्वत्व-भावना का पूर्णतया परित्याग किया जाय । जैसे ही एक व्यक्ति गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश करे, उसके अभिभावको या रिश्तेदारों को चाहिए कि उस व्यक्ति पर के अपने सब प्रकार के दावो का परित्याग कर दें । एक नारी के लिए विवाह का अर्थ क्या है, इसे हर स्त्री जानती है । उसके जीवन की यह महानतम घटना होती है । वह नितात नये पथ की राही बनती है । वह अपने मा-बाप के आश्रय और अपने उस घर को छोड देती है, जहाँ उसने कम या ज्यादा अपने जीवन के अनेक वर्ष बिताए थे । वह अपने जीवन को एक ऐसे साथी के साथ जोडने निकलती है, जिसके साथ उसका किसी भी प्रकार का रक्त-सबध नही था । इसमे शक नही कि जो बधन उसे पति से बाधने वाले है, वे रक्त-बधनो की अपेक्षा कही अधिक प्रबल होते है, लेकिन शुरू-शुरू मे तो कोई भी यह नही जानता कि ये बधन क्या रूप धारण करेगे । दो जीवनो के सयोग से अन्य प्राणियो का आविर्भाव होता है और उसके बाद साझे दुख-सुख का क्रम शुरू हो जाता है । एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न दो मानव-प्राणी किसी अज्ञात आध्यात्मिक शक्ति के सहारे भौतिक रूप मे प्राय एक बन जाते है । सुखमय वैवाहिक जीवन का अर्थ भी यही है ।

पुत्र का विवाह हो जाने के बावजूद माँ की स्वत्वाधिकार की भावना स्थिर बनी रह जाती है । पुत्र के विवाहित हो जाने पर माँ, पिता, भाई और बहन को चाहिए कि वे उसके प्रति अपने स्नेह के सब दावो को सामूहिक रूप मे नई बहू के हवाले कर दे, जिससे वह अपने पति के मान और स्नेह का अखड रूप मे उपभोग कर सके । उसे किसी तरह के प्रेम या दावे के कारण विचलित नही करना चाहिए । सभव है, यह कुछ अटपटा-सा लगे, लेकिन वस्तुत ऐसा यह है नही । मै समझता हू कि सास को यह नही सोचना चाहिए कि वह अपने घर मे बहू ला रही है, उसे बहू के बजाय पुत्री के रूप मे उसका स्वागत करना चाहिए । पति की बहन को भाभी के रूप मे उसका स्वागत नही करना चाहिए, प्रत्युत अपनी

असली बहन की तरह। यदि यह अनुभूति वास्तविक होगी तो पुत्र या भाई के बधन पूर्ववत् रहेगे और सभवत वह अधिक सुदृढ होगे, लेकिन एक अन्य ही रूप मे। उस अवस्था मे वह पुत्र नही, बल्कि दामाद बन जायगा, दूसरी ओर भाई न रहकर बहन का पति होगा और इसीके अनुसार नतीजे भी हासिल होगे। एक दामाद स्नेह, मान और विशेष चिता का अधिकारी होता है। आप महसूस करते है कि उसके प्रति आपकी सब तरह की जिम्मेदारियाँ है, लेकिन किसी प्रकार का अधिकार नही। इस दृष्टि से मै सुझाव दूँगा कि यदि आप अपने बेटे के साथ दामाद यानी अपनी नई मुहबोली बेटी के पति के तौर पर व्यवहार करेगे तो इसका परिणाम यह होगा कि जहाँ आप एक ओर अपना सारा स्नेह तथा मान उसे लगातार देते रहेगे, वहाँ आप उससे अधिकार के नाते स्वयमेव कुछ भी दावा करना छोड देगे। आप अपने पुत्र के घर मे यह समझ कर नही जायगे कि वैसा करने का आपको अधिकार है, प्रत्युत अपनी बेटी के घर मे एक सम्मानित अतिथि के नाते जायगे। इसी तरह बहन अपने भाई के घर मे इस दावे के साथ नही जायगी कि वह उसके भाई का घर है, बल्कि अपनी बहन के घर जायगी। मेरा अनुभव है कि मानसिक दृष्टिकोण मे इस परिवर्त्तन के आधार पर कल्पनातीत सुख-शाति की रचना हो जायगी। यदि बहू के साथ बेटी का-सा व्यवहार किया जाय तो वह अवर्णनीय प्रेम का प्रतिपादन करेगी, और वह खुद भी और अपने पति को भी ऐसे कार्यों की प्रेरणा करेगी, जिनसे अधिकाधिक स्नेह और सुख की उत्पत्ति हो। एक हिंदू पत्नी के हृदय मे से जिस क्षण आप प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या के तत्वो को दूर कर देगे, और जैसे ही उसे यह सतोष हो जायगा कि वह अपने पति के घर और उसके स्वत्वो की एकछत्र एव एकमात्र स्वामिनी है, वह स्वत ही अपने पति के अभिभावको और रिश्तेदारो के साथ ऐसे ढग का व्यवहार करेगी, जो इस विषय मे सिवा हिन्दू नारी के अन्य कोई नही कर सकता। यह मै अपने निजी अनुभव और ज्ञान के आधार पर कहता हूँ। मेरा ख्याल है कि इस जीवन मे अपनी

माताजी से अधिक समझदार महिला मेरे देखने मे नही आई । उन्होन इन्ही सिद्धातो के आधार पर कार्य किया था । उनके एक मुह-बोले भाई थे, लेकिन उनके भाई की पत्नी उनकी बहन थी । भाई से वह इस-लिए प्रेम करती थी कि वह उनकी इस नई बहन के पति थे, और दूसरी ओर यह बहन यानी लोकव्यवहार की भाषा मे मेरी मौसी मेरे और अपने निजी पुत्र के बीच रचमात्र भेद नही करती थी । हम एक गॉव मे रहते थे और वह रहती थी लाहौर नगर में । यद्यपि उनकी स्थिति इतनी सुखकर नही थी तथापि उन्होने बहुत जोर देकर मुझे अपने यहॉ बुला लिया । अपने आपको अत्यधिक असुविधा मे डाल कर भी उन्होने मुझे अपने यहॉ पाच वर्ष तक रखा और मेरी कालेज की शिक्षा को पूर्ण किया । जब मेरा विवाह हुआ तो मेरी माताजी ने मेरी पत्नी के साथ बहू-जैसा नही, बल्कि अपनी निजी बेटी-जैसा व्यवहार किया । उसकी सुख-सुविधा को वह मेरी सुख-सुविधा से भी कही अधिक आकती थी । वह बरसो मेरे और मेरी पत्नी के साथ रही । हमारे ही घर मे उनका स्वर्गवास हुआ और यद्यपि हम कहा करते थे कि वह घर की मालकिन है और हम सब उनके बच्चे है, तथापि वह हमेशा इसी बात पर जोर देती थी कि यह घर तो उनकी नई बेटी का है और वह इस घर में मेहमान के तौर पर रहती है । इसी का यह परिणाम था कि हमारे यहॉ चिरतन सुख-शाति थी ।

बहुधा इस बात को महसूस नही किया जाता कि एक स्त्री पिता या मॉ के प्रेम के लिए कितनी तरसती है । अनेक अवसरो पर मुझे इसका बडा विचित्र अनुभव हुआ है । अनेक युवा लोगो ने मुझे अपना स्नेह-दान किया है । मेरी अधेड जिदगी के इन बरसो मे मेरा यह सबसे बडा सुख है । ढग सुख के पीछे भेद यह है कि मेरी बहुत-सी मुह-बोली बेटियॉ है, जो अपने घरो की मालकिने तथा कई-कई बच्चो की माताएँ है । बडे विचित्र ढग से मुझे यह स्थिति प्राप्त हुई है । पति और पत्नी की मौजूदगी मे मैने बहुधा युवा लडकी से यह सवाल किया है कि क्या वह मेरी बेटी बनना चाहती है या बहू, और इसका उत्तर असदिग्ध रूप मे 'बेटी' मिला ।

कुछ समय पूर्व इसी भावना का मुझे एक बहुमूल्य अनुभव हुआ। कलकत्ते के सरकारी भवन मे एक स्नेही बहन मेरे यहाँ आई। कुछ दिन रही और जाते समय बोली, "आप लोगो के साथ कुछ दिन रह कर मुझे बडी खुशी हुई, लेकिन मै नही जानती कि इस सुख को पाने के लिए मेरा बारबार आपके यहा आकर रहना उचित होगा या नही।"

मै मुस्कराया, और मैने कहा, "यह कठिनाई तो सहज ही हल हो सकती है। मुझे तुम्हे बहन बना लेना चाहिए या बेटी। इनमे जो बनना चाहो, वह तुम बनाओ।"

उसका नि.सकोच उत्तर था, "मै बेटी बनना चाहती हूँ।"

प्रत्येक नारी के हृदय मे माँ और पिता के प्यार के लिए जो भूख है, उसका यह सकेत-मात्र है। यदि सास-ससुर उसे अपने बेटे की पत्नी न मान कर उसे अपनी बेटी बना ले तो आश्चर्यजनक सुख की समृद्धि होकर रहेगी।

## ५

## मैंने वकालत कैसे शुरू की

मार्च १९०० तक जावडा (मध्यभारत) के स्कूल मे पढने के बाद मै कई महीने तक बीमार रहा। अक्तूबर १९०० मे मेरे पिताजी ने मुझे अपने ननिहाल लाहौर मे जाने की स्वीकृति दे दी ताकि मै मार्च १९०१ मे पजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा मे बैठ सकू। आया तो मै यहाँ केवल ६ महीने के लिए था; लेकिन साढे चार वर्ष तक रह गया, और मार्च १९०५ मे मै फारमन क्रिश्चियन कालेज, लाहौर से ग्रेजुएट हो गया। १९०३ तक मुझे तनिक भी ख्याल नही था कि मै कानूनी पेशा अख्तियार करूगा। यदि वास्तविक रूप मे मुझपर छोडा जाता तो मै डाक्टर (चिकित्सक) बनता। मैने जुलाई १९०३ में मैडिकल कालेज मे भर्ती होने की सोची भी थी, लेकिन पिताजी नही माने। उन्होने जावडा मे एक मित्र से सलाह ली और उनकी सलाह

के अनुसार मैंने १९०५ मे बी० ए० की परीक्षा पास कर ली। इस बीच डाक्टरी पेशे का आकर्षण तो फीका पड चुका था और उसकी जगह कानूनी डिग्री हासिल करने की कुछ-कुछ इच्छा हो गई थी। यह इच्छा उत्पन्न होने की एक बडी विचित्र घटना है।

शायद १९०३–४ की बात है। एक दिन सुबह-सुबह यूनिवर्सिटी रॉयल कमीशन के सदस्य हमारे कालेज मे आये। इस कमीशन के एक सदस्य सर गुरुदास बनर्जी थे, जो बडे वकील और उन दिनो कलकत्ता हाईकोर्ट के जज थे। समाचार-पत्रो मे कमीशन की नियुक्ति-सबधी घोषणा छपी थी और उसमे गुरुदास बनर्जी के विषय मे लिखा गया था "हमारे ट्रस्टी और स्नेही गुरुदास बनर्जी, एम० ए०, डाक्टर आॅव लॉ।" मै इन शास्त्रीय उपाधियो से बडा प्रभावित हुआ। मैंने अपने मन मे निश्चय किया कि मै भी एक दिन "एम० ए० और डॉक्टर ऑव लॉ" बनूगा। उस समय मेरी आयु केवल पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी और मेरी यह अभिलाषा मुझे तबतक मन-ही-मन उद्वेलित करती रही जबतक कि मैंने इसे पूरा नही कर लिया। तदनुसार पिताजी ने जब मुझे कानूनी शिक्षा के लिए इलाहाबाद जाने को कहा तो मै तत्काल वहा जाने को राजी हो गया।

उन दिनो सयुक्तप्रात (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) मे कानूनी शिक्षा का तरीका बडा ही असतोषजनक था। प्रात मे उस समय केवल एक ही विश्वविद्यालय था—इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वह शिक्षा-सस्था नही थी, बल्कि ऐसी परीक्षा-सस्था थी जो मात्र परीक्षाओ और उपाधियो के लिए पाठ्यक्रमो का निश्चय करती थी। कानूनी शिक्षा प्रात के कुछ मुख्य कालेजो मे नियत की गई कानूनी-कक्षाओ मे दी जाती थी। इनमे मुख्य कालेज थे—म्यूर सैंट्रल कालेज, इलाहाबाद, कैनिग कालेज, लखनऊ और आगरा कालेज, आगरा। कालेज अधिकारी इन कानूनी कक्षाओ-को कालेज के सामान्य प्रबध के लिए अतिरिक्त आय का साधन समझते थे। अदालतो के वकील कक्षाओ मे पढ़ाने आते थे, जिन्हे बहुत थोडी

तनख्वाहे दी जाती थी। इलाहाबाद मे चार सौ रुपये माहवार के एक प्रोफैसर और डेढ सौ रुपए के दो लेक्चरार थे। ये लोग सप्ताह मे तीन बार लेक्चर देते थे। प्रोफेसर समूचे वर्ष प्रात काल कक्षा लेता था और दोनो लेक्चरार शाम को। इसका कोई चारा भी नही था, क्योकि उन्हे दिन के समय अदालतो मे भी काम करना होता था। इलाहाबाद मे छुट्टिया भी बहुत लम्बी होती थी, गर्मियो मे अढाई महीने की —अगस्त से लेकर अक्तूबर तक। जिन दिनो हाईकोर्ट बन्द होता था, उन दिनो भी दस सप्ताह के लिए कोई लेक्चर नही होते थे। इस तरह कानून के विद्यार्थियो का बहुत-सा समय व्यर्थ जाता था। कोई तिमाही या छमाही इम्तहान भी नही होते थे। किसी भी स्वीकृत सस्था की कक्षा मे नियत सख्या मे लेक्चरो की हाजिरी के बाद सीधे एल-एल० बी० मे बैठ सकता था। लेक्चरार एक समय मे पैतालीस-पचास मिनट तक अपना लेक्चर देते थे और विद्यार्थी उनके नोट लिख लेते थे।

किसी भी युवक के लिए यह बडा ही कष्टकर प्रश्न होता है कि वह कौन-सा पेशा अख्तियार करे। मेरे सामने भी यही समस्या थी। माता-पिता ने मुझे लाहौर और इलाहाबाद भेज कर काफी कष्ट उठाया था और अब यह सर्वथा असभव था कि मै उनपर और अधिक बोझा बन कर रहूँ। मै घर लौट आया और मैंने किसी भारतीय रियासत मे नौकरी की खोज शुरू की। मुझे कही नौकरी न मिली और मेरे आवेदन-पत्रो का भी कोई जवाब नही आया।

ब्रिटिश भारत मे तो नौकरी का प्रश्न ही पैदा नही होता था। न तो मै असाधारण योग्यता-सम्पन्न था और न ही मेरा कोई प्रभाव था। कानूनी पेशा अख्तियार कर लेना भी मेरे लिए कोई सहज नही था। पहले मुझे कोई उपयुक्त स्थान चुनना था। सयुक्त-प्रात के प्राय सभी जिले मेरे लिए समान रूप मे उपयुक्त थे, क्योकि सारे ही मेरे लिए अपरिचित थे और कही भी मेरा कोई सबधी न था। इस प्रकार जब मै बेकारी और अनिश्चय के दिन काट रहा था तो भगवान् ने पडित पृथ्वीनाथ के रूप

मे मुझे सहायता भेजी ।

पडित पृथ्वीनाथ कानपुर की जिला अदालत मे बडे वकील थे । सभी जातियो के लोग उनका सम्मान करते थे और उनसे प्रेम करते थे । उनका व्यक्तित्व बडा ही प्रभावशाली था । प्रात भर मे अपने समग मे वह बहुत बडे जिरह करने वाले माने जाते थे । एक अग्रेज जज ने खुले-आम कहा था कि यदि कभी किसी हत्या के अपराध मे मै फस जाऊ तो अपने जीवन को पडित पृथ्वीनाथ के हाथो सौप दूगा । झूठे गवाहो और बदमाशो के लिए वह आतक थे । वह कानपुर बार एसोसिएशन के प्रधान थे । कानपुर की प्राय प्रत्येक सार्वजनिक सस्था मे वह सक्रिय दिलचस्पी लेते थे । उनकी आमदनी बहुत थी और उसी प्रकार वह उदारतापूर्वक परोपकार के कार्यों मे खर्च भी करते थे ।

जुलाई १९०७ मे जब मैंने वकालत की परीक्षा पास की थी तो मै पहली बार पडित पृथ्वीनाथ से मिला था । मेरी ही तरह वह भी काश्मीरी ब्राह्मण थे । लेकिन उनके साथ मेरी कोई रिश्तेदारी न थी । मै कानपुर मे अपने चचेरे भाई से मिलने गया था और उसी समय मै एक स्थानीय दीवानी के जज से भी मिला, जिनके नाम मेरे पास एक परिचय-पत्र था । जज महोदय सहृदयतापूर्वक मिले और उन्होने पूछा कि भविष्य मे अब तुम्हारी क्या करने की इच्छा है । मैंने कहा कि अभी तक तो कुछ नही सोचा । इसके बाद वह बोले कि उत्तर-प्रदेश की जिला अदालतो का मुझे पर्याप्त अनुभव है और मेरी राय मे पडित पृथ्वीनाथ ही ऐसे योग्य व्यक्ति है जो इस पेशे में आने वालो को सीधी राह पर डाल सकते है । उन्होने बहुत जोर के साथ पडितजी से मुझे मिलने की सलाह दी । तदनुसार मै उनसे मिला । पडित पृथ्वीनाथ ने इससे पहले भी मेरा नाम सुन रखा था । जज महोदय ने उनके विषय मे जो विचार प्रकट किये थे, मैंने उन्हे दुहराया । वह मुस्कराए और बोले कि अगर तुम कानपुर आने का निश्चय करो तो मै तुम्हारी अवश्य सहायता करूँगा । उस समय यह बिलकुल ही साधारण-सी चर्चा हुई थी । कानपुर एक बडा नगर और उसमे

रहना बडा खर्चीला था । इसपर सर्वथा अपरिचित होने के कारण मेरे लिए वहा जीवन आरभ करना बडी गम्भीर समस्या बन गई थी ।

इसी सोच-विचार मे महीनो बीत गए । मै सन्देह और चिन्ता के समुद्र मे डूबता उतराता रहा, लेकिन किनारा नजर नही आता था और अन्तत मैंने उसे पार करने का निश्चय किया । जनवरी १९०८ मे, जब मै साढे बीस वर्ष का था, मैंने पडित पृथ्वीनाथजी को एक पत्र लिखा । छ महीने पहले उनके साथ हुई मुलाकात का जिक्र किया और पूछा कि क्या मै कानपुर आ जाऊँ । वापसी डाक से दो पक्तियो का एक खत मिला । वह हमेशा बहुत सक्षेप मे लिखते थे । खत मे लिखा था, "अवश्य आओ, मुझे तुम्हारी सहायता करने मे खुशी होगी ।" इस खत से मेरी सारी कठिनाइया हल हो गई । और ५२ रु ८ आना अपनी जेब मे रख कर फरवरी १९०८ को मै घर से कानपुर के लिए रवाना हो गया ।

१९०८ मे जब मै कानपुर की बार मे शामिल हुआ तो यह प्रान्त भर मे सबसे जबरदस्त जिला अदालत मानी जाती थी । यह नगर चिरकाल से इस प्रान्त का औद्योगिक केन्द्र रहा है और साथ ही प्रान्त भर मे सबसे बडा नगर है । यहाँ का धनी और सम्पन्न व्यापारिक समुदाय अदालत मे काम करने वालो के लिए पर्याप्त आय का साधन है । यहाँ की अदालत मे वकीलो की बहुत बडी सख्या थी और हर कोई बार एसोसिएशन का सदस्य भी नही था । जो हो, कुछेक अभागे लोगो को छोड कर एसोसिएशन के हरएक सदस्य को कुछ-न-कुछ काम मिल ही जाता था । बार एसोसिएशन के सदस्यो के पारस्परिक सबध भी बहुत अच्छे थे और पडित पृथ्वीनाथ के नेतृत्व मे बैच और बार मे पारस्परिक सम्मान और आदर की भावना विद्यमान थी ।

इन सह-व्यवसायियो से शीघ्र ही मै पडित पृथ्वीनाथ के छोटे और सहायक वकील के रूप मे परिचित हो गया । इससे एसोसिएशन के सदस्यो की नजरो मे मेरा भी कुछ-कुछ दर्जा समझा जाने लगा । हर कोई मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करता था ।

मैंने कुछ अज्ञानतावश स्व-विज्ञापन के आधार पर अपनी वकालत शुरू की। एक मित्र के सुझाव पर मैंने 'अमानत की ज़ब्ती'-सबधी कानूनी विषय पर एक लेख लिखा, जो जून १९०९ मे 'इलाहाबाद लॉ जर्नल' मे छपा। कानपुर बार के सदस्यो ने इसपर खूब टिप्पणियाँ की।

उन दिनो पडित पृथ्वीनाथ हरदोई (अवध) मे एक बडे दीवानी मामले मे लगे हुए थे। मै सहायक के रूप मे उनके साथ वहाँ गया और पन्द्रह दिन तक वहाँ रहा। इस मुकद्दमे मे मुझे पैसा तो नही मिलना था, लेकिन बडी मूल्यवान शिक्षा की गुँजायश थी। मेरे लिए यह पहला ही मुकदमा था कि जिसमे गवाहियाँ थी और मै बडे वकीलो द्वारा कलापूर्ण जिरह और फिर जिरह-पर-जिरह को सुनता रहा। मेरे लिए यही सबसे बडी शिक्षा थी। इस मुकदमे मे रीति-सबधी एक प्रश्न उत्पन्न हो गया, जिसके द्वारा दोनो पक्षो पर लागू होने वाले उत्तराधिकार के सामान्य हिंदू कानून मे सशोधन हो जाता था। पडित पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने लिए एक टिप्पणी तैयार करने को कहा, जो मैने तैयार कर दी। मै नही कह सकता कि वह टिप्पणी उनके लिए किसी प्रकार लाभदायक सिद्ध हुई या नही, लेकिन जहाँ तक मेरा सबध था, उसके कारण मै अपने शेष जीवन के लिए कानून की उस दिशा का पूर्ण जानकार बन गया।

एक घटना यहाँ विशेष उल्लेखयोग्य है। भारतीय मुकदमेबाजी की मूल बातो के विषय मे इसके द्वारा मुझे पहले-पहल परिचित होने का मौका मिला। दोनो पक्षो मे बडी दिलचस्पी और बडे व्यय के साथ यह मुकदमा लडा जा रहा था, यद्यपि जिस सपत्ति के सबध मे यह झगडा था उसका कोई विशेष मूल्य नही था। दोनो पक्ष निकट सबधी यानी चचा-भतीजे थे। चाचाओ का दावा था कि वह निकटतम सबधी होने के नाते मृतक की सारी जायदाद के उत्तराधिकारी है और भतीजो का तर्क यह था कि पारिवारिक रीति-अनुसार वह चाचाओं के साथ उस सपत्ति के समान उत्तराधिकारी है। हम भतीजो की ओर से पेश हुए थे

और दोनो ओर से रिवाज का सबूत देने के लिए जबानी और लिखित बहुत-सी गवाहियाँ उपस्थित करनी पडी थी। अगर यह मुकदमा आखिरी हद तक ही लडा जाता तो सभव था कि दोनो ही पक्ष बुरी तरह तग आ जाते। फलत मैंने अपनी नई-नई सूझ-बूझ के अनुसार मुवक्किलो को समझौता कर लेने की राय दी। यह सुनने पर उन्हे जो वेदना और दु ख हुआ था वह मै आज भी नही भूला हूँ। मेरे मुवक्किल ने मुझसे कहा, "समझौता! आप समझौते की चर्चा करते है! यह जमीन नही है, ये हमारे पूर्वजो की हड्डियाँ है। मै भला समझौते और अपने दावे को तिलाजलि देने की कैसे सोच सकता हूँ!" तब मुझे पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि भारत मे एक मनुष्य अपने पूर्वजो की भूमि के साथ कितनी दृढतापूर्वक बधा हुआ होता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे इस भावना की शक्ति और सत्यता का कई बार अनुभव हुआ है।

सबसे पहली पेशी का मुझे अनोखा अनुभव हुआ था और मेरे लिए तो वह मनोरजक भी थी। पडित पृथ्वीनाथ के कहने पर उनके एक मुवक्किल ने मुझे पन्द्रह रुपये फीस देकर फैसले से पहले कुर्की की दरख़ास्त देने को कहा। यह मुकदमा एकदम मामूली था और निश्चय ही इसकी आज्ञा जारी हो जाने वाली थी। मैंने बडी सावधानी के साथ दरखास्त लिखी और अदालत मे पेश की। जज ने इस आशा के साथ मेरी ओर देखा कि मै उन्हे उस दरखास्त के बारे मे ब्यौरा दूँ। लेकिन मेरी तो जबान को काठ मार गया था। मै एक भी शब्द न बोल सका। जज महोदय ने शर्मीले युवक पर नजर डाली। उन्होने अर्ज़ी पढी और जो प्रार्थना की गई थी उसके लिए आज्ञा जारी कर दी।

इसके बाद दूसरा अनुभव कुछ उससे बेहतर था। यह मेरा निजी मुकदमा था यानी पडित पृथ्वीनाथ का इसमे कही दखल नही था। यह एक गरीब आदमी की फौजदारी अपील थी, जिस पर एक साधारण अपराध के लिए जुर्माना किया गया था। इसकी फीस पाँच रुपए थी, लेकिन

फीस की रकम का प्रश्न तो मेरे लिए सर्वथा अविचारणीय था। मेरे लिए तो मुकदमे का होना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। किस प्रकार मैने इसकी तैयारी की, किस प्रकार मैने इसके सब पहलुओ पर विचार किया, किस प्रकार मैने मन-ही-मन बारबार अपने ख्याल के अनुसार इस मुकदमे मे उठने वाले अनेकानेक प्रश्नो पर बहस को दोहराया। लेकिन जिस जिला मजिस्ट्रेट के सामने यह अपील पेश हुई, वह मुझे सर्वथा हृदयहीन और कठोर-सा जान पडा। मेरे मुवक्किल के साथ जो भारी अन्याय हुआ था उसका उसपर कुछ भी असर नही हुआ। उसने फैसला पढा, मेरी ओर देखा, मै बोला, और अचानक जो कुछ मुझे कहना था, उसका नब्बे प्रतिशत भूल गया और एकाएक चुप हो गया। नतीजा यह हुआ कि तत्काल अपील खारिज हो गई। दिन भर मै बहुत ही परेशान रहा, लेकिन मुवक्किल ने इस बात को इतना महसूस नही किया। वह अपील खारिज हो जाने पर भी खुश था। जब वह २५ बरस बाद मुझे मिला तो उसने मुझे मेरे इस सबसे पहले असली मुकदमे की याद दिलाई।

६ :

# मेरा पहला मुवक्किल

४४ साल पहले की यह कहानी है। उस समय मै निरा युवक था। भरी-पूरी जवानी थी और सगी-साथियो मे काफी लजीला था। कानपुर की अदालतो मे मैने वकालत शुरू की ही थी और बडी मुश्किल से बारह महीने बीते थे। एक तग और भद्दी-सी गली मे किराये के मकान मे मेरा दफ्तर था। दफ्तर के कमरे को मेजो, कुर्सियो तथा अन्य सामान से सजाने की मुझमे क्षमता नही थी और इसलिए मैने पुराना भारतीय ढग अपनाया। मेरे दफ्तर के सामान मे कुल-जमा एक दरी, एक सूती कालीन, जो मुझे पिताजी ने दिया था, और एक मसनद—तकिया था।

एक दिन सबेरे मै अपने कालीन पर पालथी लगाए बैठा था कि किसी प्रकार के शिष्टाचार के बिना चुपचाप एक बूढ़ा आदमी भीतर आया। जंगली-सी उसकी आँखे थी और वह पागल-सा लगता था। फटे-पुराने चीथडो मे वह अर्ध-नग्न और बहुत ही ऊँची धोती बाधे हुए था। गुमसुम वह बैठ गया। उसने मुझे और मेरे सामान को देखा और तब एकाएक बोला, "आप हर किसी के मुकदमे करते है, क्या आप मेरा मुकदमा नही करेगे ?" मै भौचक रह गया और इससे पहले कि मै अपने आश्चर्य के बारे मे उससे कुछ कह सकू, उसने अपनी बगल की एक पोटली मे से टीन के दो गोल डिब्बे निकाले। ग्रामीण लोग अक्सर ऐसे डिब्बो मे अपने कीमती कागज़ रखते है, जिससे आग, पानी या दीमक से वे सुरक्षित रहे। दोनो डिब्बो के ढक्कन खोल कर उसने उनमे से लिपटे हुए कागजो के दो गोल पुलिंदे निकाले और उन्हे मेरी ओर फेकते हुए वह बोला,—"यह है मेरा मुकदमा, मेरा मुकदमा करो।"

जैसे मुझपर किसी ने जादू कर दिया हो। उस बूढे आदमी के साथ उसकी पागल-सी अवस्था मे बात करना भी दरअसल असभव था। मैने उससे यह पूछने के बजाय कि तुम्हारा मुकदमा है क्या, कागज़ के उन दोनो पुलिंदो को उठा लिया और उन्हे खोलना शुरू कर दिया। वस्तुतः वे बहुत लबे थे, कई गजो मे उनकी लबाई थी, और मै उन दिनो सयुक्त प्रांत की कानूनी अदालतो की अत्यधिक फारसी-नुमा उर्दू को पढने का भी अभ्यस्त नही था। मैने कुछ कठिनाई के साथ उन दोनों पुलिंदो का इतना मतलब निकाला कि ये १८४७ और १८४९ मे कानपुर के ज़िला जज की अदालत की कार्रवाइयो की नकले है। परमात्मा ने मुझे प्राचीनता के लिए रुचि प्रदान की है, और जैसा कि यह १०० बरस पुराना मामला था, मेरा ध्यान उसी पर जम गया। इस प्रकार कुछ देर के लिए उस बूढे को भूलकर मैने उन पुराने दस्तावेज़ो को पढ़ जाने की कोशिश की। उस शिकस्ता लिखाई को पढकर मालूम हुआ कि ये दोनो दस्तावेज कानपुर के ज़िला जज की अदालत की उस मुकदमे की डिगरियाँ है, जो नदिहा

खुर्द (जिला कानपुर) के किसी महाराजसिंह ने १८४५ मे इस मुद्दे को दायर किया था कि सन् १८२४ मे उसने जो जमीन किसी के पास ७१० रु० मे रहन रखी थी, उसे बहाल कराया जाय। उसके मुकदमे का आधार यह था कि बधक रखनेवाले और उसके वारिसो के पास यह बधक-भूमि पिछले २० बरस से भी ज्यादा अर्से से है और वह उसके किराए और लाभ से मूल और ब्याज सहित रहन की कुल रकम वसूल कर चुके है। इसलिए असली मालिक को वह भूमि बिना किसी मुआवजे के वापस मिलनी चाहिए। ऋणदाता ने इस मुकदमे का यह जवाब दिया था कि भूमि का किराया और लाभ इतना कम था कि उससे ऋण की रकम का ब्याज भी पूरा नही हुआ, इसलिए मूल और ब्याज की बडी भारी रकम अभी तक बकाया है, और इस अवस्था मे मुकदमा खारिज किया जाय। खफीफा जज ने मुकदमे की डिगरी जारी कर दी थी। लेकिन जिला जज ने अपनी आज्ञा (पुलिदा न० १) मे अधिक जाच और हिसाब की पडताल का आदेश दिया था, और यद्यपि खफीफा अदालत को निगरानी के बाद यह मालूम हुआ कि ब्याज और मूल सहित कुल ऋण पूरा हो चुका था, तो भी जिला जज दूसरी और अतिम आज्ञा (पुलिदा न० २) मे खफीफा जज से असहमत रहा और उसने निर्णय दिया कि ब्याज तक भी (लगभग १०५ रु० अभी बकाया थे) पूरा नही हुआ, और इस आधार पर उन्होने मुकदमा खारिज कर दिया।

इन दोनो पुलिदो को पढकर मैने उस पागल बूढे आदमी की ओर ध्यान दिया। मैने उससे पूछा कि इस जमीन के साथ उसका क्या सबध है और इन दस्तावेजो का उसे क्या करना है। उसने जवाब दिया, "जमीन रहन रखन वाले महाराजसिंह का मै बेटा हूँ, जिसने १८४५ मे मुकदमा दायर किया था, और आज भी हमारा परिवार उस पैतृक-भूमि के अधिकार से वचित है। जिसके पास यह जमीन जबसे पहले रहन रखी गई थी, उसके अधिकार से निकल यह चार या पाच हाथो मे जा चुकी है, और मौजूदा—समय (सन् १९०९) मे यह कानपुर के एक लखपति उद्योगपति के अधिकार मे है।" इस सज्जन का कहना है कि उन्मुक्त भूमि-अधिकार के

रूप मे उसने आखिरी मालिक से यह जायदाद खरीदी है और फलत. इस अधिकार के नाते वह इसका पूरा-पूरा मालिक है। रहन-जैसी किसी भी बात से उसने इन्कार कर दिया था। और सभी सरकारी इन्दराजो मे उसे और यहाँ तक कि उसके पूर्व के मालिको को भी उस जायदाद का पूरा-पूरा मालिक दर्ज किया गया था, जो १८२४ से लेकर मूल्य की दृष्टि से बीस गुने से भी ज्यादा की हो चुकी थी।

इन दस्तावेजो के आधार पर मुझे मालूम हुआ कि उसका नाम बच्ची-सिंह था। मैने उससे पूछा कि इस मुकदमे से सबधित अन्य कागजात, जैसे, बधक-पत्र की नकल और दूसरे पुराने दस्तावेज़ तथा अधिकार-पत्र कहाँ है? उसने कहा कि इन दो पुलिदो के सिवा उसके पास कोई दस्तावेज नही है, यहाँ तक कि उसके पास बधक-पत्र की भी नकल नही है, जिससे यह मालूम हो सके कि उसके पूर्वजो का किसी भी रूप मे इस जमीन से कोई नाता था या उन्होने कभी किसी के पास इस जमीन को बधक रखा था। इसके अलावा दीवानी अदालत की कार्रवाई के पुराने कागज मिलने भी असभव थे, क्योकि जिला कानपुर मे १८५७ के गदर के दिनो में सब सरकारी रिकार्डों को जला डाला गया था और ऐसी अवस्था में दीवानी अदालतो या तहसील से इसके सबध मे कुछ भी पता नही लग सकता था।

इसपर मैने धीरे-से कहा कि तुम्हारा मामला तो बहुत ही विकट नजर आता है। कागजो के बिना हो ही क्या सकता है? तुम्हारे पास बधक-पत्र तक की तो नकल है नही! लेकिन वह था कि मेरी किसी भी बात पर ध्यान ही नही देता था। उसकी तो एक ही रट थी, कभी-कभी फुसफुसाते हुए, कभी रोते हुए और कभी ऊँची आवाज मे, "आप सबके मुकदमे लडते हो, लोग सभी तरह के मुकदमे लडते है, मेरा मुकदमा कोई नही लडता। आप मेरा मुकदमा क्यो नही लडते?" मै बडे असमजस मे था। उससे पिड छुडाने का रास्ता भी दिखाई नही देता था। तब एका-एक खयाल आया और मैने उससे कहा कि तुम इन दो पुलिदो को यही छोड

जाओ। मै इन्हे एक बार और देखूगा। जब तुम फिर से आओगे तो इस-पर अधिक चर्चा करेगे। मौजूदा हालत मे किसी तरह की फीस का प्रश्न ही नही उठता था।

जब वह चला गया, तो पता नही क्या हुआ कि इस मुकदमे मे मेरी रुचि बढ गई और वह मेरे दिमाग पर हावी-सा हो गया। मै इन कागजो को कचहरी जाते हुए साथ ले गया। वहाँ बार-लायब्रेरी मे मैने उन्हे ध्यान के साथ बारबार पढा। अपने एक निकट के साथी से मैने इसकी चर्चा की और वह ठहाका मार कर हॅसते हुए बोले, "अरे, उसी बूढे बच्चीसिह की कहते हो! क्या वह पागल तुम्हारे पास भी गया था? वह तो झक्की है और पिछले दस बरस से कानपुर की अदालत मे वह अपने इस मुकदमे को लिये फिरता है। और हाँ, कोई भी नया-नया वकील उससे अछूता नही बचा, हर किसी के पास वह हो आया है। तुम उसकी चिंता न करो! बस टाल दो उसे!"

लेकिन करने की अपेक्षा यह कहना आसान था। लाख चाहने पर भी मै इस मुकदमे को छोड नही सका था। इसके बाद ठीक से याद नही कि मैने कितनी किताबे पढ डाली। मुझसे बडे वकील (प० पृथीनाथ) की लायब्रेरी मे इस कानून के विषय का बहुत-सा साहित्य था। कचहरी की लायब्रेरी मे ढेरो पुराने विवरण मौजूद थे। इन सब सदर्भ-पुस्तको को, जो भी मुझे मिल सकी, बहुत दिनो और सप्ताहो तक उलटता-पलटता रहा। इन पुस्तको की अनुक्रमणिका की सहायता से मै ज्यो-त्यो अपने मुकदमे से सबधित उन सब मुकदमो को देख गया, जिनका १९वी सदी मे फैसला हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि १८०० और १८६० के बीच मे प्रचलित कानून और विधि से मै पूरी तरह वाकिफ हो गया। इस बीच बच्चीसिंह भी लगातार मेरे पास आता रहा। जब उसने देखा कि मै उसके मुकदमे मे इतनी दृढता और लगन के साथ लगा हूँ तो उसका मस्तिष्क कुछ शात हो गया और आचरण मे भी वह उतना विक्षिप्त नही रहा। मै समझता हू कि इससे पहले उसने जीवन मे ऐसी

सहानुभूति का कभी अनुभव नही किया था।

लेकिन कोरी सहानुभूति से कुछ नही हो सकता था। प्रश्न यह था कि किया क्या जाय। लगता था कि बिना नीव के इमारत खडी करने-जैसा यह काम है। मैंने कानूनी किताबो और कानूनी विवरणो को केवल इसलिए पढा था कि पुरानी विधि से जानकारी हो जाय और इसके बाद मैंने तहसील मे कई घटे और दिन बदोबस्त के उन विवरणो को पढने मे लगाये, जो १८५७ के बाद विशेषत इस गॉव से ताल्लुक रखते थे। संयुक्त-प्रात के जिला कानपुर में स्थायी बदोबस्त की मालगुज़ारी प्रचलित नही थी। हर ३० साल के बाद मालगुजारी बदोबस्त होता था और ज़िला कानपुर मे १९०१ से १९०५ के मालगुज़ारी बदोबस्त के सारे विवरण मे बच्चीसिह या उसके पिता का कही भी उल्लेख नही था। जिस व्यक्ति के अधिकार मे उस समय वह जमीन थी, उसका नाम उस जायदाद के मालिक के रूप मे दर्ज किया गया था। इससे पूर्व १८७०–१८७५ के बदो-बस्त के विवरणो से बहुत-कुछ ज़ाहिर हो जाता था। मैंने अनेक अनु-क्रमणिकाओ, रजिस्टरो, साराशो तथा अस्त-व्यस्त कागजो को देखा और मुझे पता लगा कि १८५७ से पहले पुराने मालिक महाराजसिंह का नाम मालगुज़ारी के विवरणो मे से इस जायदाद के बधककर्त्ता के रूप मे हटाकर बधक रखनेवाले का नाम इस जायदाद के पूरे मालिक के रूप मे दर्ज कर दिया गया था। बीस बरस बाद १८७५ मे नये बदोबस्त के समय महाराजसिंह ने मालगुजारी के विवरणो मे उस इदराज मे सशोधन और बधककर्त्ता के रूप मे अपना नाम दर्ज करने की दर्खास्त दी थी। यह जाय-दाद उस समय जिसके अधिकार मे थी, उसने जवाब दिया था कि इस समय बधक है ही नही और १८४९ मे जिला जज की अदालत मे सुनवाई के बाद महाराजसिंह के खिलाफ जो खर्चे की डिगरी हुई थी उसकी कुर्की कर ली गई है, और उस कुर्की मे बधक-कर्त्ता के रूप में उसके अधिकार-पत्र और अन्य अधिकारों की नीलामी की गई। तदनुसार बधक रखनेवाले ने उन्हे ख़रीद लिया और इस प्रकार बधक का मामला पूर्णतया ख़त्म हो

गया। लेकिन यह कार्यवाही माल-अफसर की अदालत मे बहुत ही सक्षिप्त रूप मे हुई थी और जान पडता था कि आखिरी फैसले के लिए जो तारीख नियत की गई थी, उस दिन मालिक की ओर से कोई भी हाज़िर नही हुआ, और नायब तहसीलदार ने आज्ञा दी कि महाराजसिंह का नाम बधककर्त्ता के रूप मे दर्ज किया जाय। यह इदराज १८७५ मे हुआ था, लेकिन कुछ बरस बाद किसी भी ढग से, जिसका मै पता नही लगा सका, इस आज्ञा को पुन. बदल दिया गया और महाराजसिंह और उसका परिवार सब इस रगमच से पूर्णतया गायब हो गए।

जो हो, मालगुज़ारी बदोबस्त के रिकार्डो मे कई प्रकार की अन्य सूचनाएं दर्ज थी, जैसे, १९ वी सदी मे समय-समय बधक-भूमि पर लगा मालिया और उसपर किसानो से लगान की वसूली। यह जाहिर था कि अगर ज़िला जज के इस फैसले को सही मान भी लिया जाता कि १८४९ मे मूल और ब्याज का एक हिस्सा अभी बकाया था, तो भी पिछले ५७ बरसो मे सारी स्थिति बदल गई थी। इसका मतलब यह था कि न केवल बधक की सारी रकम एक अर्से मे पूरी हो चुकी थी, बल्कि मालिक को देने के लिए एक बहुत बडी रकम बधक रखने वाले के पास जमा हो गई थी।

दोनो पुलिंदो की जब अधिक जाच की गई तो उससे मुकदमे के सबध मे एक और भेद मिला। यह साफ जाहिर था कि वह पुराने दस्तावेज है, लेकिन मैने देखा कि एक तो उनमे सरकारी नकल है, जो अदालतो से सरकारी मोहर के साथ मुकदमा दायर करने वाले को मिलती है और दूसरी गैर-सरकारी नकल थी, जो किसी के द्वारा किसी समय घर पर तैयार की हुई थी। फैसलो और डिगरियो की सरकारी नकले कीमती दस्तावेज़ होते है। एक गैर-सरकारी नकल का कानूनी तौर पर कुछ भी महत्व नही होता और कोई भी अदालत उसे प्रमाण-रूप मे स्वीकार नही करती। लेकिन यहा मामला यह था कि सादी नकल इस मुकदमे का पहला फैसला था और सरकारी नकल आखिरी फैसले की थी। पहले गैर-

सरकारी दस्तावेज़ मे इस मुकदमे का सारा ब्यौरा दर्ज था, यानी, अदालत खफीफा और अपील के फैसले । इन दोनो फैसलो मे बधक-पत्र के आवश्यक विवरण भी थे—बधक-कर्त्ता और बधक रखने वालो के नाम, तारीख और वह रकम जो कर्ज के रूप मे दी गई थी। दूसरी नकल मे किसी भी अदालत ने इन विवरणो को फिर से देना आवश्यक नही समझा। अगर आप मिसल से इस सादी नकल को निकाल दे तो इस बधक-सबधी दोनो पक्षो और तारीख आदि का कुछ भी पता न चले। इस दृष्टि से सिवा इस सादी नकल के दूसरा कोई सबूत उपलब्ध नही था।

दोनो दस्तावेजो मे मूल पर ब्याज की दर को भी स्पष्ट नही किया गया था। इस कठिनाई को मैने ज्यो-त्यो पार कर लिया था, क्योकि सन् १८०६ मे यह नियम जारी किया गया था कि कर्ज लेनेवाले और देने वाले का निपटारा करने के लिए कोई भी अदालत १२ प्रतिशत सालाना से ज्यादा की मजूरी नही देगी। इसका मतलब यह हुआ कि १८३४ के बधक-पत्र मे चाहे जो भी ब्याज की दर दर्ज हो, पर अदालती मुद्दो के लिए १२ प्रतिशत की दर ही मान्य होगी।

इससे आगे एक दूसरी भयकर बाधा थी मियाद के सवाल की। कानून बधक-कर्त्ता को जमीन छुडाने और ऋण-दाता से वापस लेने के लिए ६० बरस की इजाजत देता है। ये ६० बरस १८८४ मे पूरे हो चुके थे। मै यहाँ बता देना चाहता हूँ कि अगर बधक रखने वाला या उसका उतराधिकारी अथवा प्रतिनिधि लिखित रूप मे ऋणी को बधक-कर्त्ता के तौर पर और जमीन का असली मालिक स्वीकार करता है तो कानून मियाद की अवधि मे वृद्धि करने की इजाजत देता है। इस लिखित स्वीकृति के लिए मैने १८७५ के माल रजिस्टर मे सशोधित इदराज को आधार बनाया, जिसमे नायब तहसीलदार ने हुक्म दिया था कि महाराजसिह को बधक-कर्त्ता और उस एक मुसम्मात को बधक रखने वाली लिखा जाय, जिसके अधिकार मे उस समय वह जमीन थी। जब वह दस्तावेज तैयार किया गया था, इसपर महाराजसिंह और पर्दानशीन मुसम्मात दोनो के

हस्ताक्षर हुए थे। मुसम्मात की ओर से गाव के पटवारी ने इस प्रकार दस्तखत किये थे—"मुक्तकौर बकलम शिवदयाल पटवारी।"

इस प्रकार अब मै मुकदमे की पूरी-पूरी तैयारी कर चुका था और कानून के अथाह सागर मे कूद जाने को उतारू हो गया था। दूसरी ओर बेचारा बच्चीसिह कौडी-कौडी के लिए मोहताज था और इसलिए निहायत किफायत-शारी के साथ काम भी करना था। इसके साथ ही मै मुकदमे की रकम इतनी बडी भी रखने का निश्चय कर चुका था कि जिससे पहली ही अपील पर यह सीधे हाईकोर्ट मे जा सके।

दोनो पुलिदो और १८७५ के इदराज की सरकारी नकल के आधार पर मैने बधक-पत्र को फिर से लिखा और पक्ष-समर्थन की तैयारी कर ली। मेरा पक्ष यह था कि ब्याज की निश्चित दर केवल १२ प्रतिशत सालाना थी। मेरा कहना था कि जिला जज के फैसले को ही आधार-रूप मे ग्रहण किया जाय, जबकि १८४९ मे मूल और ब्याज का थोडा-सा अश बकाया थे, लेकिन ज्यादा-से-ज्यादा दस बरस के अदर मूल और ब्याज-सहित बधक की सारी रकम वसूल हो जाती है। उसके बाद मेरा कहना था कि पिछले ५० बरसो से जिन लोगो के कब्जे मे यह जमीन थी, उनके पास एक बहुत बडी रकम फालतू रह जाती है। इस तरह अत मे मैने दावा किया कि यह जमीन बच्चीसिह (असली बधक-कर्त्ता के बेटा) को वापस दिलाई जाय, और साथ ही किराये और मुनाफे का सारा हिसाब लगा कर वह हजारो रुपए का अतिरिक्त लाभ भी उसे दिलाया जाय। अवधि के बधन से बचने के लिए मैने १८७५ के इदराज का आश्रय लिया, जो बधक रखने वाले के द्वारा बधककर्त्ता के अधिकार-पत्र की स्वीकृति थी। ७१० रुपए के असली बधक-ऋण पर मैने ५३ रु० की अदालती फीस लगाई और न्याय-प्राप्ति के मुद्दे से मैने दावे की कीमत ५२०० रु० आकी। तदनुसार मैने कानपुर के मातहत जज की अदालत मे मुकदमा दायर कर दिया। मैने उन सब व्यक्तियो या उनके उत्तराधिकारी अथवा कानूनी प्रतिनिधियो को प्रतिवादी बनाया था, जिनके अधिकार मे यह जमीन सन् १८२४ से लेकर

कभी भी रही थी। आखिरी नाम था उस लखपती उद्योगपति का, जिसके कब्जे मे वह जमीन इस समय थी।

कचहरी मे जब इस मुकदमे का समाचार फैला तो बार लायब्रेरी मे खूब फबतियाँ कसी गई। हर किसी ने इसे कोरा पागलपन समझा। बच्चीसिह तो पागल था ही और उसके नौजवान वकील के बारे मे भी यही खयाल किया गया। किसी ने भी इसे गभीरतापूर्वक ग्रहण नही किया, क्योकि जाहिरा तौर पर वह बेबुनियाद था, यहाँ तक कि बहुत से प्रतिवादियो ने पेशी पर हाजिर होने की भी परवा न की। लखपती महाशय ने कानपुर-कचहरी के बडे-बडे कई वकीलों को तैनात किया था, लेकिन मेरा खयाल था कि बच्चीसिह की किस्मत का पासा पलट चुका था और ये बडे-बडे वकील इस मुकदमे के बारे मे बिलकुल बेफिक्र थे। न तो उन्होने और न उनके प्रतिवादी ने इसपर कोई ध्यान दिया। बधक-पत्र मौजूद नही था, और साफ ही इसके कारण कानूनी स्वीकृति भी नही थी और उनके मन में स्पष्टतया इस दावे की मियाद निकल चुकी थी। इस बात का किसीको खयाल भी नही हो सकता था कि अधिकार-पत्र की मान्यता पर बधक रखने वाले के ही दस्तखत होगे। मेरा यह भी खयाल है कि प्रतिवादियो मे किसी ने तहसील मे जाकर इस मुकदमे के बारे मे किसी तरह के दस्तावेज देखने की भी तकलीफ गवारा न की थी। इसके अलावा उन्होने सबसे बडी एक और भी ग़लती की। दोनो पुलिंदो की सावधानी के साथ जाच करने के बिना ही उन्होने कल्पना कर ली कि ये दोनो सरकारी नकले है और प्रतिवादियो के लिखित बयानो मे यह साफ तौर पर मान लिया गया कि जिन दो पक्षो का मैंने अपने दावे मे जिक्र किया था, उनमे कथित तारीख को एक बधक-पत्र लिखा गया था। बधक-पत्र की यह मान्यता आखिरकार बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

बधक और उसकी तारीख के तथ्य को मानने के अलावा प्रतिवादियो ने इस दावे से कतई इन्कार किया था और अनुरोध किया था कि अगर कोई बधक है तो भी, वह सर्वथा समाप्त हो चुकी है और यह दावा पूर्णतया

निराधार और बेहूदा है ।

इस मुकदमे की पहली पेशी कई दृष्टियो से वस्तुत उल्लेखनीय है । माननीय जज खुशमिजाज वयोवृद्ध सज्जन थे । वह बडे दयालु और विवेकी थे। जैसे ही मुकदमा शुरू हुआ, उन्होने अपनी जानकारी के लिए इस्तगासा पढा । वह मुस्कराये और निश्चय ही उन्होने समझ लिया था कि यह एक असाधारण मुकदमा है । उन्होने मेरे उन दोनो पुलिदो को उठाया और बडे गौर से उन्हे पढा । फिर एकाएक मुझसे बोले, "वकील साहब, यह वाला पुलिदा तो सरकारी नकल नही है । फिर आप इसे सबूत मे कैसे पेश कर सकते है ?" मै जानता तो था ही, लेकिन मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "जनाब, क्या आपको इसका पूरा यकीन है ? क्या मै देख सकता हूँ इसे ?" उन्होने वह मुझे दिया और मैंने बात को बनाए रखने के लिए बहुत उत्सुकता के साथ उसे देखा और उसके बाद बहुत ही लापरवाही दिखाते हुए मैंने कहा, "तो इससे क्या ? जाहिर है कि यह दस्तावेज काल्पनिक नही है और यद्यपि यह अनधिकृत और गैरसरकारी नकल है तथापि यह बिलकुल सही जान पडता है। इस मुकदमे की विशिष्ट अवस्थाओ को ध्यान मे रखते हुए कृपया इसे सबूत के तौर पर रख लीजिए। मुझे विश्वास है कि दूसरे पक्ष को भी इसपर एतराज नही होगा।"

मेरे इतना कहते ही प्रतिवादी-पक्ष बेहद उत्तेजित हो उठा और बड़े जोर का एतराज उठाया। इसपर जज ने कहा, "साफ है कि इसे मै सबूत के तौर पर नही ले सकता। मै इसे नामजूर करता हूँ।" जैसे ही उस दस्तावेज को नामजूर किया गया, वैसे ही प्रतिवादियो के वकीलो ने तत्सबधी जटिलता को महसूस किया। उन्होने अदालत से अपने पहले बयान मे सुधार करने की और बधक-पत्र के तथ्य और तारीख की मान्यता को वापस लेने की मजूरी चाही, जो उनके कथनानुसार प्रस्तुत रद्द किये दस्तावेज पर ही आधारित थी। अब थी मेरी बारी। मैंने इसका बलपूर्वक विरोध किया। मैंने कहा, "बयानो मे जिन बातो को स्वीकार किया जाता है, उनका दोनो

पक्षो की ओर से सबूत के तौर पर पेश किये दस्तावेजो के साथ कोई सबध नही होता और इस मामले मे जो खासतौर पर स्वीकृति की गई है, वह पूर्णतया बिना शर्त की है। अगर मौजूदा मुकदमे मे प्रतिवादियो को अपनी स्पष्ट और असदिग्ध स्वीकृतियो को वापस लेने की इजाजत दी गई तो यह बडा भारी अन्याय होगा।" मै जानता तो नही, लेकिन बहुत सभव है कि जज को मेरे पागल मुवक्किल और साथ ही उसके पागल नौजवान वकील पर दया आई और वह दृढ रहे। उन्होने प्रतिवादी-पक्ष को अपने बयान मे सशोधन करने की मजूरी नही दी। जितना कुछ वह मान चुके थे, वह बहाल रहा और अब मुझे रत्ती भर भी इस बात की चिता नही थी कि मेरा वह मूल्यवान कागज मिसल पर रहता है या नहीं। मेरा मतलब हल हो चुका था।

बहुत थोडी जबानी गवाहिया थी, इसलिए थोडे ही दिन बाद बहस की बारी आ गई। बहस का सिलसिला काफी लबा था। मै नही जानता कि क्योकर मै उस सारे बोझ को सहन कर गया। निश्चय ही इसका कारण मेरा आत्म-विश्वास था। मुकदमे के विषय मे मेरी बेहद तैयारी थी और जज साहब चूकि बहुत ही धैर्यवान और साथ ही दयालु थे, इसलिए उन्होने नौजवान नये वकील की लबी बहस को बडी शाति के साथ सुना। मै समझता हूँ कि मैने उनका बहुत-सा समय नष्ट भी किया होगा, लेकिन मुकदमे की एक के बाद एक खाई को मै पाटता गया। आखिरकार मियाद के जटिल प्रश्न पर बहस करने के लिए मैने इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक फैसले का आश्रय लिया। मेरा तर्क था कि अदालत को यह मानना चाहिए कि मुसम्मात की ओर से इस दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिए चूकि पटवारी कानूनी तौर पर एक अधिकृत प्रतिनिधि था, और इसमे एक बडी भारी कानूनी मान्यता समाविष्ट है, इसलिए विधवा द्वारा यह मान्यता उसके उत्तराधिकारियो पर भी बधन-रूप मे लागू होती है। सारी बहस के दौरान मे जज साहब मुस्कराते रहे और एक बार तो ऑख दबाते हुए उन्होने कहा भी, "पडित साहब, आप तो कनकौआ कच्चे

धागे पर उडा रहे है।" लेकिन मै रुका नही, बढता गया और अपने पक्ष मे जो भी तर्क दे सकता था, देता गया। मुझे लगता था जैसे बच्चीसिह और उसके बच्चे मेरे चोगे के एक छोर को खीच-खीच कर कह रहे है, "कहते जाओ, कहते जाओ, रुको नही।"

दूसरी ओर वे बडे-बडे वकील थे, जो हँस-हँस कर इस मुकदमे को बेकार करने की कोशिश मे थे, लेकिन उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना के बिना, क्योकि वर्तमान मे उन सबका स्वर्गवास हो चुका है, इतना तो अवश्य कहूँगा कि उन्होने इस मुकदमे को केवल खिलवाड समझा था और वास्तव मे यह नही समझा था कि इस मुकदमे के लिए अच्छी-खासी तैयारी और गभीर तर्क की आवश्यकता होगी। बहस की समाप्ति पर जज ने फैसला सुरक्षित रखा।

इन माननीय जज की आदत थी कि बहुत सावधानी के साथ टिप्पणियाँ लिख लिया करते थे और उसके बाद फैसला देने से पूर्व हफ्तो घर पर स्वत सारी मिसल का अध्ययन किया करते थे। एक महीना बीत गया और फैसले के बारे मे रत्तीभर भी समाचार न मिला। मै बडे असमजस मे था और आशा भी बहुत नही थी, क्योकि जज महोदय यद्यपि दयालु व्यक्ति थे, तथापि मुकदमे के दौरान मे उनकी एक भी टिप्पणी उत्साहवर्द्धक नही रही थी। जो कुछ उन्होने उस बीच कहा था, वह मेरा पक्ष-समर्थन नही करता था।

अचानक एक महीने के बाद मुझे उनकी अदालत मे एक दूसरे मुकदमे मे पेश होना पडा। देखते ही वह अनायास सहजभाव से बोले, "ऐसा लगता है कि आपकी पतग उड कर ही रहेगी।" मै उनके सकेत को समझ गया और मेरा दिल उछलने लगा। थोडी ही देर बाद फैसला सुनाया गया, और मै आश्चर्य-चकित था। यही नही कि उस जायदाद पर अधिकार करने की डिगरी जारी की गई थी, बल्कि उसके साथ ही सब प्रतिवादियो को सयुक्त रूप में बच्चीसिह को अतिरिक्त लाभो के रूप मे २० हजार रुपये की नकद रकम भी अदा करनी थी। सक्षेप मे, यह सारी रकम लखपती उद्योगपति

को चुकानी थी। यह मुकदमे की डिगरी नही, विशुद्ध सोना था। यह कहना कि मै खुश था, असलियत को हल्का करना है। सच तो यह है कि मै खुशी से नाच उठा। मेरी खुशी की सीमा न रही और जो-जो खयाल उस समय आये उन्हे वर्णन करना असभव है। बार-लायब्रेरी मे बस मेरी-ही-मेरी चर्चा थी, जैसे कुछ अपूर्व घटना हो गई हो।

इसके बाद इलाहाबाद हाईकोर्ट मे प्रतिवादी पक्ष ने अपील की और वहा भी बच्चीसिह की किस्मत ने उसका साथ दिया। माननीय जजो के सामने जब मुकदमा पेश हुआ तो उन्होने दावे के पुरानेपन पर बेहद आश्चर्य प्रकट किया, लेकिन आखिरकार मातहत अदालत के फैसले को स्थिर रखते हुए अपील खारिज कर दी। इस महान विजय से बच्चीसिह को कैसा लगा, उसे शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। यहाँ मुझे एक दूसरे मुवक्किल की कही बात याद आ गई है। मैने उसे उसके पुरखो की जमीन के बारे मे समझौता करने का मशविरा दिया था। मेरी सलाह पर उसने कहा था, "आप नही जानते कि आप कह क्या रहे है। ये जमीनें नही है, मेरे पूर्वजो की हड्डियाँ है।" और बच्चीसिह इस मामले मे ९० बरस के बाद अपने पूर्वजो की जमीन वापस ले रहा था। मै खुशी के उन आँसुओ को चित्रित कर सकता हूँ, जो उसने और उसके बच्चो ने जीवन की इस महानतम घटना पर बहाए होगे।

उसे उसकी जमीन ही वापस नही मिली, उसकी बुद्धि भी लौट आई। इस फैसले से वह एक समझदार आदमी बन गया और इसके बाद जब भी कभी वह आया, वह उन जगली आँखोवाला और फटे-पुराने चिथडो वाला बूढा आदमी नही था। वह तो बिलकुल ही एक दूसरा बच्चीसिंह था—साफ-सुथरे वस्त्र पहने, जिसके साथ चार नौकर थे, जिनमे एक हुक्का थामे रहता। अब वह ठाठ-बाट का आदमी बन गया था।

लेकिन आप पूछेगे कि इस मुकदमे मे आपको क्या मिला? उसने मुझे क्या दिया? मुझे वह मिला, जिसकी कीमत को आका नही जा सकता। उसने मुझे दी आत्म-निर्भरता, उसने दिया मुझे आत्म-विश्वास और उसी के कारण मै अपने अदर के वकील की खोज कर सका। मुझे इस बात का

दृढ विश्वास है कि वकालत के पेशे मे मैंने भविष्य मे जो भी सफलता पाई, उसकी नीव उस पागल बूढे की शुभ-कामनाओ और आशीषो पर दृढता तथा सचाई के साथ रखी गई थी। इस प्रकार बच्चीसिह का मै बेहद ऋणी हूँ। आप कहेगे यह सब तो महज भावुकता है। नकद क्या मिला ? मुकदमे का फैसला ही सबसे बडा इनाम था। फिर भी बच्चीसिह जो दे सका, उसने मुझे दिया। मुकदमे की शुरू से आखीर तक की तैयारी के लिए बच्चीसिंह ने मुझे ३५ रु० दिये थे और जब मातहत अदालत मे वह जीत गया तो एक दिन बहुत ही शर्माता हुआ वह मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे शब्दो के साथ उसने ३५ रु० मुझे और दिये। अब आप ७० रु० की इन दोनो रकमो के साथ मेरी इस कहानी को लिखने की खुशी को भी जोड लीजिए।

## ७

# साहसी लड़की

मै समझता हूँ कि किसी बच्चे के लिए इससे बढकर कोई दुर्घटना नही हो सकती कि वह अनाथ हो जाय। हममे से कइयो को दो विश्व-युद्धो के साथ-साथ गत २० बरसो के भीषण अनुभव भी हुए है और ससार के विभिन्न देशो मे असख्य यातनाओ और विस्तृत नर-सहार ने इस अनत दु ख मे अभिवृद्धि ही की है। वर्तमान मे सभी जातियो के लाखो ऐसे बच्चे है, जो मानवी निर्दयता या गुनाहो के कारण पितृहीन या मातृहीन बन गए है। कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण के सगठन इन असहाय बच्चो की देख-भाल के लिए अथक यत्नो मे लगे हुए है और इसमे शक नही कि यह प्रशसनीय भी है, लेकिन किसी बच्चे के जीवन मे माँ-बाप की जगह को कोई भी दूसरी वस्तु पूरा नही कर सकती।

इस बात का जवाब देना बहुधा कठिन हो जाता है कि उस अनाथ का जीवन अधिक कष्टकर होगा, जिसके पास कुछ भी नही या उसका,

जो आम बोलचाल मे या तो उत्तराधिकारी है या उत्तराधिकार-रहित है, जिस बच्चे की नाम को भी जायदाद नही होती, लेकिन जिसे दूसरो, यानी नातेदारो या गोदलिये माँ-बापो या शिशु-गृहो से विशुद्ध प्यार मिल जाता है, वह अक्सर भाग्यवान होता है। लेकिन दुर्भाग्य से जो बच्चा किसी धनी का उत्तराधिकारी बननेवाला होता है, वह ऐसे रिश्तेदारो का शिकार बनता है, जो अपने निजी मुद्दो से उसकी सपत्ति को हडपने की कोशिश करते है। वे ऊपरी तौर पर बच्चे के कल्याण की बडी चिता दिखाते है। वे उसके प्रति माँ-बाप से भी ज्यादा प्यार दिखाते है, लेकिन इस सारे दिखावे की पृष्ठभूमि मे एकमात्र नीच भावना यही होती है कि जैसे भी हो बच्चे की सपत्ति को हडप लिया जाय। अदालतो मे इस प्रकार के सरक्षको का मुझे निजी अनुभव है। इस तरह के बच्चो की देखभाल और सरक्षण के लिए राज्य ने गार्जियन एण्ड वार्ड्स एक्ट (अभिरक्षित बालको के सरक्षण का कानून) बनाकर पर्याप्त प्रबध कर रक्खा है, लेकिन, जैसा कि एक सुप्रसिद्ध लेखक ने कहा है, हिन्दू-धारणा के अनुसार मृत्यु के बाद हिन्दू के यहाँ उसे नरक-यातनाओ से बचाने के लिए पुत्र का होना आवश्यक है, जो दाह-क्रिया के समय अग्निदान तथा वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म कर सके। इसके लिए वास्तविक पुत्र न होने पर किसी को गोद ले लिया जाता है, जिससे मरने के बाद मृतक की आत्मा को भटकना न पडे। फिर भी देखने मे आता है कि गरीबो को इस तरह से आत्मा की रक्षा की जरूरत नही होती, बल्कि सपत्ति वाले आदमियो को ही मरने के बाद रक्षा की चिता रहती है, तभी वे बच्चे गोद लेते है। इसी प्रकार अदालतो मे भी यही देखने मे आता है कि जिस बच्चे की जायदाद होती है, उसके रिश्तेदार उसके सुख की बडी चिता करते है तथा वे विद्वान न्यायाधीश भी, जो इस पैतृक अधिकार के बारे मे अपना मत प्रकट करते है, अधिक चिता करते है। सपत्तिहीन बच्चे के विषय मे कोई भी किसी न्यायाधीश को कष्ट नही देता। जो बच्चे जायदाद के उत्तराधिकारी बनने वाले होते है, उनके रिश्तेदार शहद की मक्खी के छत्ते की तरह उन्हे घेरे रहते है।

बच्चे के सुख की चिता करने वाले प्रतिस्पर्द्धी रिश्तेदारो मे जो झगडे और सघर्ष होते है, वे अक्सर बडे ही दिलचस्प होते है। इसके अतिरिक्त जज लोग भी ऐसे पेशेवरो की सचाई के बारे मे बडे सशयात्मक होते है। मुझे ऐसे एक मुकदमे की अभी तक याद है। ३५ या ४० बरस की बात है। जिला-न्यायाधीश की अदालत मे बच्चो के पिता के दूर के भाइयो के बीच यह मुकदमा चला था। एक तो उनमें बच्चे का फुफेरा भाई था और दूसरा मौसेरा भाई। जिला-न्यायाधीश ने फुफेरे भाई को बच्चे का सरक्षक नियत किया था और अपील मे मौसेरे भाई की ओर से मै पेश हुआ था। न्यायाधीश महोदय (मि० जस्टिस टडबाल) का रुख सर्वथा सहानुभूति-रहित था और उन्होने अत्यधिक रुखाई के साथ उल्लेख किया था कि आप तो व्यर्थ ही बीच मे आ कूदे है, और बच्चे के साथ आपका कोई रिश्ता नही है। इस टिप्पणी पर मुझे बडा आश्चर्य हुआ और मैने सुझाव देते हुए निवेदन किया कि माननीय न्यायाधीश सभवत हिन्दू-परिवार-प्रणाली की उपेक्षा कर रहे है। मैने बताया कि रक्त-सबध के भाई को छोड कर, चार प्रकार के दूसरे भाई होते है—पिता के भाई के पुत्र, या पिता की बहन के पुत्र, माॅ के भाई के पुत्र या माँ की बहन के पुत्र, और हिंदू-परिवार मे इन चारो भाइयो को निकटतम रिश्तेदार माना जाता है। इन्हे छोड किसी अन्य को बच्चे का हितैषी कैसे नियत किया जा सकता है? मेरा मुवक्किल ऐसे निकटतम सबधियो मे से एक है। लेकिन न्यायाधीश टडबाल पर इस दलील का कोई असर न हुआ। सच बात तो यह थी कि वह कुछ भी सुनने को तैयार न थे। उन्होने कहा, "आप दोनो मे बच्चे का कोई भी रिश्तेदार नही, आप लोग तो केवल गिद्ध है और महज अपने मतलब के लिए यहाॅ आ जुटे है।" इस धारणा के बाद स्वाभाविक ही मेरे लिए और कुछ कह सकना मुश्किल था और अपील खारिज हो गई। इसपर भी यह कहे बिना नही रहूँगा कि न्यायाधीश टडबाल ने आवश्यकता से कुछ अधिक कठोरता जाहिर की थी, लेकिन अधिकाश मामलो मे वह स्थिति को काफी सही-रूप मे समझ लिया करते थे। हर नाबालिग अदालत के सरक्षण का

अधिकारी माना जाता है। लेकिन बेचारा न्यायाधीश भी क्या कर सकता है? वह भी तो मानवी साधनो द्वारा ही कार्य करता है और ये साधन प्राय अनावश्यक रूप मे अपूर्ण होते है। ऐसे बीसियो मामलो का मुझे पता है, जिनमे नाबालिगो के अदालतो द्वारा नियत या कुदरती सरक्षको ने अपने नाबालिग के हितो को अपने मतलब के आगे बुरी तरह कुचला है। लेकिन कुछ मामले ऐसे भी हुए है, जिनमे नाबालिग लडके और लडकियो दोनो ने मैदान मे आकर मौके को बस मे कर लिया और अपने ही हाथो से उन्होने सुरक्षा के स्वर्ग की रचना कर ली। ऐसे एक नाटकीय मामले मे ऐसा नतीजा हासिल हुआ, जिसकी आशा तक नही हो सकती थी। वह घटना यह है।

दुर्भाग्य से ऐसी दो लडकियो यानी बहनो के माता-पिता की मृत्यु हो गई, जो वे एक बहुत बडी जायदाद की उत्तराधिकारिणी थी। एक पुरातन-पथी बिरादरी मे उनका जन्म हुआ था और रहन-सहन का तरीका भी उनका वही पुराना था। उनके चाचा—पिता के भाई—उनके सरक्षक बने, और मुझे मान लेना चाहिए कि उन्होने उनके लिए भरसक सब-कुछ किया भी। जब बडी बहन १६ बरस की हुई तो उसके ब्याह के प्रश्न ने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया। ऐसे रिश्ते के लिए उम्मीदवारो की बहुत बडी सख्या का होना स्वाभाविक ही था। उनमे अधिकाश बडी उम्र के थे और बडी उम्र के कारण कुदरती तौर पर विधुर थे। उनके पास जायदाद भी काफी थी। एक तो माने हुए वकील थे, दूसरे लखपती साहूकार थे। दोनो ही बिरादरी के अगुआ व्यक्ति थे और दुनियादारी के लिहाज से बिलकुल उपयुक्त उम्मीदवार थे। चाचा ने उनमे से तीसी की उम्र के एक सज्जन को चुना और जिला-न्यायाधीश की मजूरी के लिए दर्खास्त पेश की। जिला-न्यायाधीश ने पितृभाव से इस मामले मे बहुत दिल-चस्पी दिखाई, उम्मीदवारो की सारी सूची देखी, सब तरह की जाच-पडताल की और आखिर चाचा द्वारा चुने व्यक्ति की मजूरी दे दी। जिन उम्मीदवारो के नाम रद्द कर दिये गए थे, वे, मै समझता हूँ, बेहद नाराज हो गए। यद्यपि

कानून की दृष्टि से इस मामले मे उनकी कोई आवाज नही थी, फिर भी उनमें से एक ने, अपने आप अथवा नाबालिग के किसी रिश्तेदार की मार्फत इलाहाबाद हाईकार्ट मे इस आधार पर अपील दायर कर दी कि जिला-न्यायाधीश की आज्ञा नाबालिग के हितो के विपरीत है और साथ ही प्रार्थना की कि लडकी के ब्याह के बारे मे इसकी अपेक्षा उचित आज्ञा जारी की जाय।

जो हो, दूसरी ओर युवा कन्या के मन मे कुछ और ही था। जहाँ तक मुझे याद है, वह सभवत प्राइमरी कक्षा तक पढ चुकी थी। उसने घर पर ही रामायण , महाभारत और भागवत आदि अनेक पुस्तके पढी थी। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा अन्य अनेक प्राचीन महापुरुषो की विवाह-सबधी कहानियाँ जानती थी। दूर के भाईचारे मे एक २२ वर्ष का नवयुवक था, जो ग्रेजुएट था और स्थानीय कालेज मे पढता था। वह सब प्रकार से उपयुक्त था। लडकी ने उसके बारे मे या तो कुछ सुन रखा था, या उसे कभी देखा होगा और उसके मन मे उसके प्रति आकर्षण था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि उसकी शक्ल-सूरत, व्यक्तित्व तथा ग्रेजुएट की उपाधि को छोड और कुछ भी उसके पक्ष मे नही था। उसके पिता गाँव के मुनीम थे और जो थोडी-बहुत जायदाद थी भी, वह उन बडे-बडे पूजीपतियो के मुकाबले मे न होने के बराबर थी।

हाईकोर्ट मे अपील पेश हो जाने और पेशी की तारीख लग जाने के बाद लडकी ने अपनी इच्छा से अथवा अन्य किसी के सुझाव पर सारा मामला अपने हाथो मे ले लिया। उसने इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के नाम अपने हाथ से हिन्दी मे एक पत्र लिखा और उसमे अपनी सारी दुख-गाथा लिख दी। पत्र मे उसने लिखा था कि "मै बडी अभागिन हूँ। अपने माता-पिता के प्यार तथा सरक्षण से मै वचित हूँ और वर्तमान मे इस विशाल दुनिया मे सिवा आपके मेरा हित देखने वाला और कोई नही है।" इतना लिखने के बाद उसने अपने विवाह-सबधी सारी चर्चा का उल्लेख किया था। उसने लिखा था कि "जिला न्यायाधीश ने जिस व्यक्ति को चुना है, वह उसे कतई पसद नही। जैसी कि मुझे सूचना मिली है, उसकी एक आँख मे फोला

है। इसके अलावा अन्य सब उम्मीदवार भी उम्र तथा अन्य दृष्टियो से मेरे अयोग्य है। उसने अपने चुनाव का भी उल्लेख किया और अखीर मे उसने प्रार्थना की कि यदि चीफ जस्टिस महोदय स्वय व्यक्तिगत रूप मे अपील सुनेगे तो मेरा उपकार होगा, क्योकि केवल उन्ही पर मुझे भरोसा है, और अब तो मै उन्हे अपने पिता के समान समझती हूँ।"

उन दिनो इलाहाबाद हाई कोर्ट के स्थानापन्न चीफ जस्टिस सर सेसिल वाल्श थे। इस प्रार्थना-पत्र से उनका मन पसीज गया, लेकिन उस पत्र की सचाई के बारे मे उन्हे शक था। फलत उन्होने इस पत्र की सचाई की सूचना के लिए उसे जिला मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया। जिला मजिस्ट्रेट ने स्थानीय जाच के लिए उसे मातहत अफसर के पास भेजा। जब लडकी से पूछा गया तो उसने तत्परतापूर्वक स्वीकार किया कि वह उसीके हाथ का लिखा पत्र है, और साथ ही यह भी माना कि उसीने उसे चीफ जस्टिस के पास भेजा था। इस सूचना के बाद चीफ जस्टिस ने आज्ञा जारी की कि सबधित अपील उनके तथा एक अन्य यूरोपियन जज मि० जस्टिस राइब्स के सामने पेश की जाय।

इस नौजवान साहसी लडकी के पास जब यह खबर पहुँची तो उसने इस सिलसिले को आगे बढाया। उसने चीफ जस्टिस को एक और पत्र लिखा, जिसमे अपनी प्रार्थना की स्वीकृति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था कि मै इस पेशी के समय व्यक्तिगत रूप मे हाजिर होना चाहती हूँ। साथ ही उसने यह प्रार्थना भी की कि अदालत विभिन्न उम्मीदवारो की योग्यता का निर्णय कर सके, इसलिए मेरे चुनाव-सहित उन सबको भी पेशी के दिन अदालत मे हाज़िर होने का आदेश दिया जाय। इस आधार पर, और चूकि यह एकदम युक्तिसगत प्रार्थना थी, इसलिए सर सेसिल वाल्श ने इसे मजूर करके तदनुसार आज्ञा जारी कर दी। मै कह सकता हू कि जिस ढग से यह मामला उनके सामने पेश किया गया, उससे वह बहुत ही प्रभावित हुए थे। प्रस्तुत प्रश्न एक युवा कन्या का था, जो अपने विषय मे निजी राय व्यक्त करने की योग्यता रखती थी, और

उसके साथ ही उसके विवाह का प्रश्न था, जो उसके लिए जीवन मे सर्वोच्च महत्व रखता था। इससे अधिक स्वाभाविक हो भी क्या सकता था कि वह अपने निर्णय के विषय मे अपनी राय जाहिर करना चाहती थी। जब पेशी का दिन आया तो अदालत का कमरा खचाखच भरा हुआ था। हाईकोर्ट के इतिहास में इससे पूर्व ऐसी घटना नही घटी थी। अदालत का कमरा ऐसा लग रहा था, जैसे थिएटर हाल हो, जहाँ मानवता का एक महान नाटक खेला जाने वाला था। डाक्टर तेजबहादुर सप्रू चुने गए वर की ओर से पेश हुए थे। वे तो हाजिर थे, लेकिन उनका मुवक्किल और उसके अन्य साथी हाजिर नही थे। उनकी गैर-हाजरी से साफ जाहिर हो गया था कि दाल मे कुछ काला है। सब-के-सब सयानी उम्र के तो थे ही, इसलिए सभव है उन्होने इस आधुनिक 'स्वयवर' के अवसर पर वर-वधू पक्ष की रजामदी को ही इस साहस के कार्य का उचित अग मान लिया हो। जो हाजिर हुआ, वह था वही नवयुवक, जो चुस्त और भडकीली टाई लगाकर दूल्हा बना हुआ था और सचमुच वह आकर्षक भी दीख रहा था।

जैसे ही मुकदमे की पेशी हुई, सर सेसिल वाल्श ने मालूम किया कि क्या वह लडकी अदालत मे हाजिर है? वह मौजूद थी। वह वहाँ समय पर पहुँच गई थी और एक पास के कमरे मे बैठी हुई थी। सर सेसिल ने आज्ञा दी कि उसे अदालत मे लाया जाय। वह अदालत के कमरे मे आई। सादी किन्तु बहुत साफ-सुथरी उसकी पोशाक थी। बडे शात और मजबूत कदमो तथा सयतभाव के साथ वह हाजिर हुई। जजो ने बेटी के समान उसका स्वागत किया। सर सेसिल ने उसे मच पर बुला लिया और अपने पास एक कुर्सी पर बैठा लिया। उन्होने जस्टिस राइब्स की सहायता से, जो हिंदुस्तानी भली प्रकार जानते थे, कई मिनट तक उससे धीरे-धीरे बात-चीत की। उसके बाद वह डा० सप्रू की ओर मुडे और कहा, "सर तेज, हमने इस लडकी की इच्छाओ की जानकारी हासिल कर ली है। अब आप कहिए, आपको क्या कहना है और आपका मुवक्किल कहाँ है?" दर्शक के तौर पर मैं भी अदालत मे मौजूद था और मैंने देखा कि सर सप्रू

बडे ही परेशान-से नजर आ रहे थे । उनकी दशा वस्तुत बडी ही दयनीय थी । उनका मुवक्किल गैर-हाजिर था और सचमुच उन्हे कुछ भी नही कहना था, उन्होने कहा भी यही । कोई दूसरा सूरमा भी मैदान मे हाजिर नही था । जल्दी ही मुकदमा खत्म हो गया । सर सेसिल वाल्श ने जिला मैजिस्ट्रेट के फैसले को रद्द कर दिया और आज्ञा जारी की कि इस नाबालिग लडकी का विवाह इस भाग्यवान युवक के साथ किया जाय । साथ ही उन्होने सरक्षक को आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो सके, विवाह कर दिया जाय । जब सारा फैसला लिखा दिया गया तो युवक कुछ कहने को खडा हुआ । जजो की अनुमति पाकर वह बोला, "इस मामले के कारण मेरी बिरादरी मे बडा भारी विवाद उत्पन्न हो गया है और मुझे डर है कि आपके फैसले और हमारे विवाह के बाद हमे कही बडे भारी कष्टो का सामना न करना पडे । इससे भी अधिक यह कि बिरादरी के कुछ लोग हमे बुरी तरह सतायगे ।" जैसे ही सर सेसिल ने यह सुना, वह फैसला लिखने वाले की ओर मुडे और आगे यह और लिखाया, "हम जिला मैजिस्ट्रेट को आदेश करते है कि विवाह के बाद इस नव-दपति की रक्षा के लिए छ मास तक इनके निवास-स्थान पर सशस्त्र पहरा रखा जाय । साथ ही जिला मैजिस्ट्रेट को यह आदेश भी किया जाता है कि वह सार्वजनिक रूप मे सबको जता दे कि यदि इस नव-दपति को किसी भी रूप मे सताया जायगा तो हाईकोर्ट ऐसे आचरण पर कडी कार्यवाही करेगी ।" नवयुवक खुशी के मारे फूला नही समाया । वह अबोध बालिका शात-भाव से स्थिर बैठी थी, जैसे विश्व की सपूर्ण सौम्यता को कलाकार ने चित्रित कर दिया हो । जल्दी ही यह शादी हो गई और कहना न होगा कि यह शादी सब दृष्टियो से सुखद एव सपन्न थी ।

लेकिन इस कथा का उत्तरार्द्ध भी सुन लीजिए । १५ साल से ज्यादा बीत चुके थे और १९४१ के वर्ष मे व्यक्तिगत सत्याग्रह के आदोलन के सिलसिले मे मुझे जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इससे अधिक मेरा दूसरा सौभाग्य यह था कि मुझे नैनी सैंट्रल जेल मे उसी बैरक मे रखा गया,

जिसमे मौलाना अबुलकलाम आजाद थे। उन दिनो सैकडो काग्रेसी सत्याग्रही उस जेल मे थे। सारा वातावरण भाई-चारे का था और वस्तुतः हम सब एक सुखद परिवार के-से लगते थे। मौलाना साहब उन दिनो भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रधान थे। कुदरती तौर पर सब काग्रेसी कैदियो के लिए उनकी बैरक मनोरजन तथा सूचनाओ आदि की दृष्टि से बडे आकर्षण का केद्र बनी हुई थी। बरसात के दिन थे और दोपहर बाद का समय बडा सुहावना लग रहा था। ठडी और धीमी-धीमी हवा चल रही थी और मौलाना साहब दूसरी बैरको के बहुत-से दोस्तो मे घिरे बैठे थे। उसी बैरक का वासी होने के नाते मै भी वही था। पता नही कैसे कहानियो का सिलसिला शुरू होगया। मेरी भी बारी आई तो मैंने उक्त कहानी सुना दी।

इतना मै जरूर कहूँगा कि मैंने सुनाते-सुनाते उसमे थोडा नमक-मिर्च भी मिला दिया था, लेकिन नामो का उल्लेख नही किया था। सच तो यह है कि मै जानता भी किसीको नही था। कहानी सुनकर सब लोग बहुत खुश हुए और खूब हँसी और मजाक हुआ। सुनने वालो मे मेरे एक निजी मित्र थे, जो अपने जिले के बहुत सम्मानित नेता थे। वह भी चुपचाप इस कहानी को सुनते रहे, लेकिन मैंने महसूस किया कि वह इस हँसी और मजाक मे तत्परता के साथ हिस्सा नही ले रहे है। जब सारी कथा पूरी हो चुकी तो उसके थोडी देर बाद मेरे वह मित्र बडे गभीर स्वर मे मौलाना साहब से बोले—"मौलाना साहब, आप यकीन कीजिए, मै परमात्मा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने इस शादी के लिए कभी कोशिश नही की थी। जिला जज ने ही मुझे इस लडकी के साथ विवाह करने के लिए लाचार किया था और जिला जज और लडकी के चाचा के जोर देने पर ही मैंने उसके साथ शादी करने की रजामदी दी थी।" उनके इस कथन से जो गहरी चुप्पी पैदा हुई, उसका अनुमान पाठक स्वय कर सकते है और इस अप्रत्याशित घटना पर मुझे तो जैसे काठ ही मार गया। मेरी जिह्वा पर जैसे ताला पड गया! अपनी इस अक्षम्य मूर्खता पर मै बेहद पछताया। मुझे इस

बात का तनिक भी खयाल न था कि मै ऐसे श्रोताओ से वह कहानी कह रहा हूँ, जिनमे इस पुराने नाटक का एक मुख्य अभिनेता मौजूद है।

: ८ :

## कुछ पुरानी स्मृतियाँ

अपने प्रारम्भिक दिनो मे मुवक्किलो की दृष्टि से मै बडा भाग्यवान् था। कानपुर मे मैने कानूनी पेशे का कार्य शुरू किया था। वहा के बारे मे मै सर्वथा अपरिचित था, मेरा कोई मित्र न था। जिन प० पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने आश्रय मे लिया था, वह मेरे वकालत शुरू करने के १२ मास के अदर ही शारीरिक रूप मे अयोग्य हो गए और चद महीनो मे स्वर्ग सिधार गए। मै कानपुर—जैसे बडे औद्योगिक नगर मे सघर्ष के लिए अकेला रह गया। सौभाग्य से मै एक विशेष व्यक्ति का स्नेहभाजन बन गया और उन्हे मै जीवनभर विस्मरण नही कर सकता। वह एक हँसमुख वयोवृद्ध थे। उनमे बेहद उत्साह था और जिदगी, मनुष्यो तथा शारीरिक मामलो के विषय मे उनका असीम आशावादी दृष्टिकोण था। वह एक ऐसे आदमी थे, जो कभी हतोत्साह या निराश नही हुए। उनका नाम था रामचद्र। उनका अपना काफी बडा कारोबार था और व्यापारी-क्षेत्र मे उनका कुछ प्रभाव भी था। मै नही कह सकता कि क्यो या कैसे वह आत्मीयता के साथ मुझमे रुचि रखने लगे।

मै समझता हूँ कि उन्होने यह जानकर कि मेरे थोडे ही मित्र है, आप-से-आप मेरी सहायता करने का बीडा उठा लिया। वह अपने ही ढग के श्रद्धावान हिन्दू थे और प्रतिदिन प्रात काल गगास्नान करने जाया करते थे। लौटते समय वह कुछ मिनटो के लिए अवश्य ही मेरे यहा आते और थोडी देर बैठ कर जाते। मेरा खयाल है कि उन्होने अपनी मित्र-मडली मे मेरी प्रशसा भी की थी और कई बार वह अपने कुछ ऐसे मित्रो को ले आते थे, जिनका कोई-न-कोई अदालती काम होता था। उनका

अपना भी काफी अदालती काम हुआ करता था। वह सटोरिए थे और फलस्वरूप जन्मजात मुकदमेबाज थे। मेरा निजी ख्याल है कि अपने व्यवहार मे वह अत्यावश्यक रूप मे ईमानदार थे, लेकिन वह इस सिद्धात मे विश्वास नही करते थे कि सही लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सही साधनो का ही अनुसरण करना चाहिए। बल्कि उनकी धारणा इससे विपरीत थी। उनकी निजी आचार-नीति थी। यदि उनका मुकदमा सच्चा था तो वह समझते थे कि सभी क्रियात्मक उपायो से उसे जीतना न्यायपूर्ण है। इसलिए बही-खातो मे एक या दो अतिरिक्त इदराज कर देने या मीयाद की झझट से पार पाने के लिए रसीद बना लेने को वह बहुत दोष नही मानते थे। जो वह वस्तुत करते थे, उसे उन्होने कभी नही माना था, लेकिन मेरी निजी शकाएँ होती थी। अपनी नौजवानी की अक्ल से मैने कभी-कभी उनकी भर्त्सना भी की थी, लेकिन रामचद्र मेरी बातो पर ध्यान ही नही देते थे। वह कहा करते थे, "पडितजी, इसमे हर्ज ही क्या है ? इस व्यक्ति को मेरा रुपया देना है। उसे देना चाहिए, लेकिन वह देता नही, और आपके कहने का क्या यह मतलब है कि अपने बही-खातो मे थोडी हेर-फेर से मै चद कानूनी कठिनाइयो से भी पार न पा लू ? ऐसा करने मे कोई बुराई नही है।" मै रामचद्र से प्यार करने लगा था। उत्साह और आशा से वह कितने परिपूर्ण थे और मेरे हित की उन्हे किस कदर चिंता रहती थी ! एक मामले की मुझे खासतौर पर याद है। उन्होने एक काफी ठोस दावा मुझे सौपा था। अदालत खफीफा मे मै उसे हार गया जैसे ही फैसला सुनाया गया, मेरा चेहरा फक रह गया और मै सचमुच ही बेहद निराश हुआ। हम अदालत से बाहर आये। एक असाधारण अवस्था थी। वकील साहब तो सुध-बुध खोये हुए और बुरी तरह निराश थे और उनका मुवक्किल हँस रहा था और मजाक कर रहा था। उसमे दुख का लेश भी नही था। मेरी इतनी गहरी हैरानी को देखकर उन्होने मुझे उत्साहित किया और मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले, "पडितजी, इसके बारे मे आपको दुख नही करना चाहिए। मुकदमेबाजी के ये तो उतार-चढाव

है। फिर यही तो इसका अत नही हम इसकी अपील करेगे, वहाँ हम जीतेगे। आप चिता न कीजिए।" जब मै यह पक्तियाँ लिख रहा हूँ तो ४० साल पहले भी वह तस्वीर हू-ब-हू मेरी आँखो के सामने आ गई है। हमने अपील दायर की। मैने उनसे कहा कि वह मेरे साथ किसी बडे वकील को भी कर दे पर वह हर्गिज तैयार न हुए। बोले, "नही-नही, आप खुद ही कीजिए।" हमने जिला जज की पेशी मे अपना बदला ले लिया।

यह जिला जज भी अपना खास व्यक्तित्व रखते थे। वह अगरेज थे और उनका नाम आस्टन कैडल था। बडे विचित्र ढग से मै शुरू-शुरू मे उनकी निगाह मे आया था। अपनी वकालत के बारह महीनो के भीतर ही मैने उनकी अदालत मे एक अपील दायर की थी, लेकिन अपने वाद-सार को बिलकुल गलत समझते हुए मैने आधाररहित कल्पना पर अपील का मसविदा तैयार कर दिया। सात ही दिन के अन्दर-अन्दर अपील लग गई, और जब मैने मिसल देखी तो पता लगा कि मैने सारा मामला ही गडबडा दिया है। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ, लेकिन अपील का मसविदा तो सर्वथा गलत था, वह सबधित मुकदमे के स्वीकृत तथ्यो के सर्वथा विपरीत था। मै अपील की बहस के लिए खडा हुआ और मैने मुकदमे को सही दिशा पर डाल दिया। श्री कैडल को मेरी बहस सुन कर कुछ आश्चर्य हुआ, और तब अपने सामने एक नौजवान नौसिखिए को देखकर वह धीरे से कितु हँसती हुई आँखो से बोले, "लेकिन अपील के मसविदा के बारे मे आपको क्या कहना है ? उसपर आप अपने तर्क को क्योकर न्याय्य ठहराते है ? आप अपील के किस आधार पर जोर दे रहे है ?" सौभाग्य से मैने तत्काल कहा, "जनाब, न० ६ के आधार पर"। न० ६ मे लिखा था—"ऊपर लिखित और साथ-ही-साथ अन्य आधारो पर अपील को मजूर किया जाय।" इस तात्कालिक उत्तर को उन्होने पसन्द किया। वह मुस्कराए, मुझे बहस जारी रखने की मजूरी दी और अपील का फैसला मेरे हक मे किया। लेकिन उनका फैसला वस्तुत उल्लेखयोग्य था। उसकी शुरू की पक्तियाँ आज ४२ बरस बाद भी मुझे याद है। उन्होने इस ढग से शुरू किया

था:--"इस अपील मे अपील के मसविदा से ही उत्पन्न होने वाली कठिनाई है, लेकिन मै एकदम नौजवान वकील के इस स्पष्टीकरण को स्वीकार करता हूँ कि यह नितात भ्रमपूर्ण तथ्यो के आधार पर तैयार की गई थी।" इत्यादि। मै अपील मे जीता ही नही, बल्कि मै उनका कृपा-पात्र भी बन गया, और वह जज पाच वर्षो के लिए, जबतक कानपुर मे रहे, मेरे धर्म-पिता बन गए। उनकी अदालत मे मुझे अपनापन-सा लगता था और वह भी मेरे प्रति अपने व्यवहार मे अत्यधिक सौम्य दिखाई देते थे।

श्री कैंडल की इच्छा थी कि मै प्रातीय न्याय-विभाग मे नौकरी कर लू और उन्होने मुझे सलाह देते हुए कहा था कि आपकी नियुक्ति जल्दी-से-जल्दी हो जाय, इसमे मै सहायता करूँगा। लेकिन पिताजी ने इस सुझाव को नामजूर कर दिया। मैने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और तदनुसार श्री कैंडल को भी सूचना दे दी।

श्री कैंडल के साथ बातचीत और व्यवहार के ढग को मै जान गया था और अपने मामले को हमेशा ही ऐसे तरीके से पेश करने की चेष्टा करता था कि उन्हे वह पसन्द हो। उनमे एक सामान्य-सी दुर्बलता थी। वह किसी भी वकील के उस समय तक बहस शुरू करने को पसद नही करते थे, जबतक वह वस्तुत उसकी ओर ध्यान न दे ले और इन शब्दो से शुरुआत न कर दे, "अच्छा, तो अब आप कहिए।" मै यह जानता था और फलत हमेशा ही चुपचाप बैठा रहता था। मै अपने ओठो को तबतक नही खोलता था, जबतक वह "अच्छा तो, आप कहिए," शब्दो को कहकर मेरी ओर मुखातिब नही हो जाते थे। अन्य जो वकील इस खास आतरिक भेद को नही जानते थे, वह झपट पडते थे और बहस शुरू कर देते थे। इससे हमेशा ही उनका मामला उनके विपरीत जाता था।

इस प्रकार जब पेशकार ने रामचद्र की अपील पेश की तो मै हमेशा की तरह श्री कैंडल के सामने चुपचाप बैठा रहा। प्रतिवादी की ओर से डा० सुलेमान इलाहाबाद से आये थे। डा० सुलेमान समझ ही नही सके कि क्यो होने जा रहा है। मुकदमा पेश हो चुका था और वादी का वकील सर्वथा

बेफिक्र बैठा हुआ था और कोई भी कुछ बोल नही रहा था। थोडी देर बाद श्री कैंडल ने मेरी ओर ध्यान दिया और कहा, "मै समझता हूँ कि जज ने अपने फैसले मे सब सबधित न्याय-विषयक निर्णयो का समावेश कर दिया है।" मैने कहा, "जी जनाब, केवल एक ही ओर है, जो अभी हाल ही मे प्राप्त हुआ है।" वह बोले,—"वह कौन-सा सदर्भ है?" इसपर मैने उन्हे वह निर्णय-पत्र दे दिया। इससे अधिक मैने कुछ नही कहा और किसी प्रकार की बहस भी मैने शुरू नही की, क्योकि उन्होने "अच्छा तो कहिए" शब्दो द्वारा मुझे सकेत भी नही दिया था। इसके बाद वह डा० सुलेमान की ओर मुखातिब हुए और बोले, "इस मुकदमे मे एक कानूनी प्रश्न है। क्या यह ज्यादा सुविधाजनक नही होगा कि आप प्रतिवादी की ओर से बहस शुरू करे और उसके बाद प० कैलासनाथ उसका जवाब दे। इससे समय की बचत हो जायगी।" मै तत्काल सकेत समझ गया और मन-ही-मन कहा कि मैने मुकदमा जीत लिया। फलस्वरूप डा० सुलेमान ने, जो श्री कैंडल की मानसिक कार्यकारिता से अपरिचित थे, अपनी बहस शुरु की और दो घटे बोले। जज ने जाहिरा तौर पर बहुत ध्यान देकर सब कुछ सुना और मेरा यकीन है कि उन्होने सब तरह के सदर्भ भी दर्ज कर लिये और जब डा० सुलेमान कह चुके तो वह मेरी ओर मुखातिब हुए और बोले, "मै आपको सोमवार को बताऊंगा कि मै आपकी बहस सुनना चाहता हूँ या नही।" मैने कहा, 'बहुत अच्छा, जनाब!" तत्पश्चात हम बाहर आ गए और मैने रामचद्र से कहा कि मुकदमा तो हमने जीत लिया। सोमवार को अपील की मजूरी देते हुए उन्होने फैसला सुना दिया। इस तरीके से मेरा आशावादी मित्र रामचद्र सही साबित हुआ। रामचद्र ९० बरस की उम्र तक जीते रहे। वह हमेशा पहले के समान उत्साह, पितृत्व-भाव और मेरे कल्याण की चिन्ता के साथ इलाहाबाद आया करते थे।

एक और मित्र थे, जिनका चरित्र भी निश्चित ही निराला था। थे एक ठाकुर, जिनका गठा हुआ और दोहरा बदन था, सूरत-से वह बेहद काले थे, परन्तु थे बडे खुश-मिजाज। बडे ही अजीब

ढग से मै उनके सपर्क मे आया। एक दिन मै कानपुर-कचहरी की लाइब्रेरी मे बैठा था । यह साहब आये और बोले कि मै एक विचाराधीन मुकदमे मे प्रतिवादी हूँ । क्या आप उसमे मेरी ओर से पैरवी करेगे ? मैने उसके दूसरे वकीलो के बारे मे पूछा और उसने बहुत बडे-बडे वकीलो के नाम लिये । मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि वह एकाएक ऐसे वकील के पास क्यो आया है, जिसे वकालत शुरू किये अभी केवल दो बरस हुए है । मैने उससे पूछा कि यह विचाराधीन मुकदमा किसकी अदालत मे है ? उसने बताया कि सहायक जज की अदालत मे । असल बात यह थी कि यह जज मेरे पिता के दूर के नाते मे चचाजाद भाई थे । इन जज महोदय से अलग रहने मे मैने विशेष सावधानी बरती थी, क्योकि मुझे शुरू मे ही चेतावनी दे दी गई थी कि इन जरियो से वकालत चलाने का अर्थ निश्चित रूप से असफलता होगा । लेकिन यह ठाकुर बहुत ही चालाक आदमी जान पडता था और मेरा खयाल है कि उसने सब तरह की जाच-पडताल कर ली थी । सभवत उसे यह पता लग गया था कि जज साहब के साथ या तो मेरी रिश्तेदारी है या जज और मै कम-से-कम एक ही बिरादरी के है । जो हो, मेरी आत्मा तो बिलकुल साफ थी । फलत मैने पूछा कि कितने का यह मुकदमा है । उसने बताया, "१२०० रु० का ।" मैने अपनी नियत फीस ३० रु० मागी । उसने तत्काल ३० रु० मेरे हाथ पर रख दिये और मुकदमे से सबधित सब कागज मुझे सौप दिये ।

यह मुकदमा एक कर्ज देनेवाले ने जमानत की वसूली के लिए किया था । बधक बहुत पुरानी थी और बरसो पहले कर्जदार ने ५०८ रु० का भुगतान किया था । वादी ने इस भुगतान की जमा दिखाई थी और बकाया की माग की थी । मेरे मुवक्किल का कहना था कि यह भुगतान चुकता रकम के तौर पर हुआ था और बधक पर कोई रकम बाकी नही है । इस मुकदमे का विचारणीय प्रश्न केवल यही था । ५०८ रु० की बाकायदा रसीद मौजूद थी और इसके विषय मे प्रश्न यह उत्पन्न हो गया कि यह रसीद चुकता भुगतान की है या आशिक भुगतान

की। दुर्भाग्यवश इसकी भाषा बडी अटपटी थी और उसके दोनो ही अर्थ लिये जा सकते थे। चुकता भुगतान के समर्थन मे और भी अधिकृत प्रमाण पेश किये गए थे। जब मुकदमे की पेशी का दिन आया तो हमारी तरफ के सभी बडे वकील गैरहाजिर थे। मुझे छानबीन करने पर पता लगा कि उन्होने मुवक्किल से कह दिया था कि जज बेहद खिलाफ है और इसीलिए मोहनसिह नाम के इस व्यक्ति ने जज को अपने पक्ष मे करने के लिए मुझे वकील करने की तजवीज़ सोची थी। खैर, मुझे बहस करनी थी और जो कुछ मुझसे बन पडा, मैने कहा। जज ने मेरे खिलाफ फैसला दिया और उन्होने अपने फैसले मे प्रतिवादी के आचरण पर काफी कडी टिप्पणी की। उन्होने प्रतिवादी की किताबो को सरासर जाली बताया और इस तरह यह मामला ठप्प होगया। बाद मे जब मोहनसिंह मेरे पास आया और उसने अपील दायर करने को कहा तो मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मैने कहा कि यह बडी विकट समस्या है। फैसला बहुत ही सख्त लिखा गया है और जिला जज द्वारा न केवल इस अपील को खारिज कर देने की सभावना है, प्रत्युत यह भी हो सकता है कि वह झूठा और जाली सबूत पेश करने के अपराध मे फौजदारी का आदेश भी कर दे। ऐसी दशा मे बेहतर यही है कि आप किन्ही दूसरे बडे वकीलो के पास जाय। उसने कहा, "पडितजी, मै अमुक-अमुक के पास गया था। हर कोई कहता है कि मुकदमे मे जान नही है, लेकिन मैने मुकदमा लडने का इरादा कर लिया है और आप ही को इसे लडना है। आप अपील दायर कर दे।" यह अपील मेरे धर्म-पिता श्री कैडल, जिला जज की अदालत मे दायर की जानी थी। तदनुसार मैने अपील कर दी और जब उसकी मजूरी का दिन आया तो मैने श्री कैडल के तरीको को जानते हुए बस यही कहा कि फैसला अनावश्यक रूप से एक-पक्षीय है। ५०८ रु० की फैसलाशुदा रकम के लिए पक्की रसीद मौजूद है और "क्या आप कल्पना कर सकते है कि ५०८ रु० की जैसी पक्की रसीद आशिक भुगतान मे दी जा सकती है?" श्री कैडल पर इसका असर हुआ और उन्होने अपील की आज्ञा दे दी और दूसरे पक्ष को नोटिस

जारी करने का आदेश दिया। आखिरी पेशी की तारीख के लिए महीनो बाद बारी आई। इस बीच मोहनसिंह कानपुर के देहाती इलाको मे मेरा अवैतनिक प्रचारक बन गया था।

एक दिन जब मै अपने दफ्तर मे बैठा था तो मोहनसिह बडी डरावनी मूछो वाले रईसी ठाठ-बाट के एक राजपूत के साथ कमरे मे दाखिल हुआ। वह हरदम मूछो को बल देता रहता था और उसका बडा आकर्षक व्यक्तित्व था। मोहनसिंह ने उसका परिचय देते हुए कहा,—"ये है ठाकुर उमेदसिह, जो ग्वालियर रियासत के मुखिया राजपूत परिवारो मे से एक के सदस्य है। इन्हे स्नेहभाव से हर कोई चिमनाजी कहता है।" फिर उसने कहा, "पडितजी, चिमनाजी बडे भारी सकट मे है।" मैने सहानुभूति दिखाई और पूछा कि मामला क्या है। इसपर मोहनसिह ने सारी कहानी सुनानी शुरू करदी। इस दौरान ने चिमनाजी लगातार मूछो पर ताव देता रहा और समर्थन मे कभी-कभी सिर हिला देता था। मोहनसिंह ने बताया कि चिमनाजी की दादी के कारण ही सारा कष्ट है। मुझे इससे बडा आश्चर्य हुआ। मोहनसिह ने आगे बताया,"पडितजी, वह तो मरना ही नही चाहती, वह मरेगी भी नही। क्या आप इस बेइसाफी का अनुमान कर सकते है?" इस पहेली को सुनकर मुझे और भी हैरानी हुई। वह आगे बोला, "वह चिमनाजी की सौतेली दादी है। ४० साल हुए उसका पति मर गया था। यह बुढिया ईर्ष्यावश चिमनाजी और उसके भाइयो की इतनी बड़ी जायदाद पर कब्जा किये बैठी है और मरने का नाम तक नही लेती। इसके अलावा वह इन सबको लगातार परेशान करती है और ये लोग उस जायदाद की ओर ललचाई आँखो से देखते रह जाते है, लेकिन उसे पा नही सकते।" जिस दुखद ढग से उसने यह सारी कहानी कही थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके बाद उसने कहा, "बरसो से वह इस जायदाद का नाश करने मे लगी हुई है और बेचारे चिमनाजी ने इस बर्बादी को रोकने के लिए कई बार मकदमेबाजी की है, लेकिन मतलब हल नही हुआ। हाईकोर्ट तक भी ये मुकदमे जा चुके है। हमने प० सुन्दरलाल और प० मोतीलाल को

वकील किया था, लेकिन किस्मत ने हमारा साथ नही दिया और हमेशा ही हम नाकाम होते रहे। बुढिया जायदाद पर साप बनी बैठी है। आप नही जानते कि अब उसने क्या किया है ? वह एक लडका गाव मे ले आई है और उसे अपने पति के पुत्र के रूप मे गोद ले लिया है। उसने मशहूर कर रखा है कि ४० साल हुए, उसके पति ने मरने से पहले उसे इस लडके को गोद लेने की जबानी इजाजत दी थी। एकदम सफेद झूठ है यह, पडितजी। लेकिन उसने कर दिखाया है। अब तो यह एक घातक प्रहार है और हम दत्तक-पुत्र की इस मार से अपनी रक्षा करने के लिए आपके पास आये हैं। उसकी सारी कहानी सफेद झूठ है।"

जो हो, मामला तैयार करने की कुछ गुजायश तो मिली। लेकिन यह जायदाद दो लाख रुपए की थी। मैंने कहा कि मै अकेला ही इस सारी जिम्मेदारी को नही ले सकता। मोहनसिह बोला, "आप जिसे अपनी मर्जी से चाहे साथ ले ले। हम तो यह मुकदमा आप ही को सौपते है।" इसपर जबानी वसीयत की कहानी को झुठलाते हुए मैंने अभियोग लिखा और गोद लेने को कानून के विरुद्ध करार देने की माग की।

प्रतिवादी ने बाद में अपना लिखित बयान दाखिल किया। यह बुढिया रानी कहलाती थी और उसने अपनी सफाई पेश की थी। उसने जबानी वसीयत पर जोर दिया और गोद लेने को बिलकुल सही बतलाया। मुकदमे के विचारणीय मुद्दे निकाले गए और उनपर विचार के लिए पेशी का इतजार किया जाने लगा।

एक दिन रात के दस बजे के करीब मैंने किसीको अपने घर के किवाड पर दस्तक देते हुए सुना। रात को मै खुद ही घर की चौकसी करता था। मेरा नौकर दिन भर का काम पूरा करके जा चुका था। फलत: मैंने किवाडे खोली और एक आदमी भीतर आया। वह बोला, "मुझे चिमनाजी ने भेजा है।" मैंने पूछा, "किसलिए ? क्या हुआ ?" उसने कहा, "पडितजी, नानी मर गई। चिमनाजी ने आज सुबह शव को गगाजी पर ले जाते समय मुझे आपके पास यह जानने के लिए भेजा है कि अब क्या किया जाय।"

"उस दत्तक-पुत्र का क्या हुआ ?" मैने पूछा ।

"वह गाव मे ही है ।" उसने कहा ।

"क्या गाव वाले चिमनाजी के हक मे है ?"

"जी हाँ, सभी उनके साथ है ।" उसने जवाब दिया ।

"तो फिर उस पुत्र को गाँव से खदेड बाहर करो । अगर जोर-जबर की ज़रूरत पडे तो उसमे भी हर्ज नही । उसके बाद सारी जायदाद पर कब्जा कर लो ।"

"बहुत अच्छा !" कह कर उल्टे पॉव वह रवाना हो गया । बाद मे पता लगा कि मेरी सलाह का अक्षरश पालन किया गया । बेचारे दत्तक-पुत्र को मार डालने की धमकियाँ देकर भगा दिया गया और गॉव के लोगो की मदद और अनुमति से चिमनाजी ने सातो बडे-बडे गाँवो समेत सारी जायदाद पर अधिकार कर लिया । इसके बाद हमने रजिस्टरी मे सुधार करने की तहसील मे दर्खास्त दी । चिमनाजी ने कहा कि आपको तहसीलदार की अदालत मे भी चलना होगा । मैने कहा, "वहाँ मेरे जाने की कोई जरूरत नही है । इस कार्यवाही मे कोई मुखालिफ तो है नही और जो होना चाहिए, उसका आदेश हो जायगा ।" लेकिन उसने जवाब दिया, " पडितजी, आप कह क्या रहे है ? आप क्या समझते है कि हम आपको योही छोड देगे ? आप नही जानते कि क्या हुआ है । पचास से भी ज्यादा बरसो से हम इस जायदाद के लिए बुरी तरह तरस रहे थे । भगवान ही जानता है कि हमने इसके लिए कितने दुख उठाए है और कितना रुपया मुकदमेबाजी मे बर्बाद किया है । चाहे जिस अदालत मे कोई मुकदमा हो, भले ही उसमे मुकाबला हो या नही, आप उसमे पेश होगे । आपके बिना हम इच भर भी इधर-से-उधर नही होगे ।" हुआ भी ऐसा ही । मुझे याद नही कि वह मुझे कितने ही ऐसे मुकदमो मे ले गया, जिनमे मेरी जरूरत भी नही थी और हमेशा मेरी तारीफो के पुल बाधा करता था । एक बार एक गॉव मे तहसीलदार की पेशी मे मुझे हाजिर किया गया । यह इकतरफा मामला था और उसमे केवल नियमित कार्यवाही

ही की जानी थी । जब पेशी खत्म हुई तो उसने हाथी पर मेरा जलूस निकाल कर मुझे अपने गॉव तक ले जाने का अनुरोध किया । वहॉ मेरा शानदार स्वागत किया गया और मै परिवार के सम्मानित अतिथि के रूप मे रात भर वहॉ रहा । उन दिनो तहसीलदार लोग दौरे के दौरान मे इस तरह कार्यवाहियो को सुना करते थे । मुझे याद है कि एक और मामले मे हमे पेडो तले घटो इतजार करना पडा था और आखिर रात के नौ बजे एक खेमे मे मुकदमे की पेशी हुई की ।

उसके एक दूसरे काफी बडे मुकदमे मे मुझे एक सबक भी हासिल हुआ था। उसमे मुझे यह शिक्षा मिली थी कि प्राचीन भावनाएँ और विश्वास किस प्रकार मानवीय क्रियाओ को प्रभावित करते है। चिमनाजी की नानी ने एक पडौसी जमीदार की प्रार्थना पर उसे दस एकड भूमि बाग लगाने के लिए भेट दे दी थी। यह भूमि उस समय बिलकुल बेकार थी । भेट लेने वाला अच्छा शौकिया आदमी था । उसने देशभर से कई तरह के फलो के पेड मगाकर जमा किये। बहुत-सा पैसा खर्च किया और जब बुढिया मरी तो उस जमीन पर एक भरा-पूरा फलो का बगीचा लग चुका था । हिदू-कानून के अधीन यह भेट बेमानी और नानी की मृत्यु के बाद अर्थहीन थी। चिमनाजी ने मुझे जमीन की वापसी के लिए दीवानी दावा दायर करने की सूचना दी। यह बहुत ही सीधा मामला था और इसका जवाब कोई नही था। जज ने चिमनाजी के हक मे डिगरी दे दी, लेकिन प्रतिवादी को इस बात की छूट दी कि वह १२ मास के अन्दर-अन्दर अपने पेडो को हटा ले। प्रतिवादी ने जिला जज के यहॉ अपील करदी। विद्वान् जज हिदू थे। पेशी के समय उन्होने मुझसे कहा, "निस्सदेह, आप अपनी खाली जमीन का स्वामित्व पाने के अधिकारी है, लेकिन आप इन लाभकारी खडे पेडो के बदले कुछ मुआवजा क्यो नही दे देते ? केवल ईधन के लिए इन्हे काट डालना तो बहुत ही बुरा होगा।" यह कहकर उन्होने ५ हजार रुपए की रकम का सुझाव पेश किया, जो मेरी राय मे बहुत वाजिब था। मैने अपने मुवक्किल से बाहर जाकर सलाह करने

की आज्ञा चाही, लेकिन जब मैने चिमनाजी से बात की तो वह इस बात को कतई मानने को तैयार नही था। मैंने बगीचे की खूबसूरती और उपयोगिता का बखान किया तो उसने कहा, "आप इसकी चिता न करे। यह बाग ज्यो-का-त्यो हमारे पास आवेगा। शायद आपको पता नही कि हरे फूलदार पेड को काटना कितना पाप है, और मुझे यकीन है कि प्रतिवादी कदापि ऐसा नही करेगा। इसलिए हम क्यो कोई रकम दे? यह बगीचा हमारे ही लिए तो है और जैसे-का-तैसा हमे मिलेगा।" मै इसका क्या जवाब देता? मै अदालत के कमरे मे लौट गया। मैने चतुराई के साथ जज को सूचित किया कि मुझे बडा खेद है कि मेरे मुवक्किल के पास मुआवज़ा देने के लिए नकदी नही है। जज महोदय ने जब यह सुना तो उन्हे बडा बुरा लगा, लेकिन वह कर कुछ नही सकते थे उन्होने डिगरी को ज्यो-का-त्यो बहाल रखा। लेकिन चिमनाजी का कहना शब्दश सही साबित हुआ। एक बरस की समाप्ति पर उसे सारे-के-सारे पेडो सहित वह ज़मीन मिल गई। प्रतिवादी ने भी एक पवित्र हिंदू को जो करना चाहिए, वही किया। इस प्रकार चिमनाजी ने मेरा बडा ही मान किया और बरसो तक मैने उसकी और उसके पुत्रो तथा भतीजो की मित्रता के सुख का लाभ लिया।

पाठक यह जानना चाहेगे कि मोहनसिह की अपील का क्या बना? वह तो मैने जीत ही ली थी और किसी खास चतुराई के बल पर नही, बल्कि निरतर धैर्य एव दृढता के सहारे मै उसमे और सैकडो अन्य मुकदमो मे सफल हुआ था।

## ६
## अपराध और अपराधी

अपराध और अपराधियो के बारे मे लिखते समय मै कुछ अजीब-सी बेचैनी महसूस कर रहा हूँ। पुराने जमाने मे कानून-भग करने वाले के साथ बहुत-ही बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। सैकडो अपराधो

के लिए मृत्यु-दड ही एक सजा थी । वारेन हेस्टिंग्स के काल मे, हमारे भारतीय इतिहास मे नदकुमार इसी तरह की बर्बरता का शिकार बना था। लेकिन अब तो जनमत मे बडी जागरूकता उत्पन्न हो गई है और इन दिनो अपराधी को अत्यत स्नेह, सहानुभूति और दयापूर्ण व्यवहार का अधिकारी माना जाता है ।

प्रचलित सिद्धात यह है कि अपराधी को दड देने की अपेक्षा उसके प्रति दया प्रकट करनी चाहिए। उसके बारे मे यह खयाल किया जाता है कि वह किसी मानसिक रोग या मनोवैज्ञानिक पीडा का मरीज है और उसने जो किया, उसके लिए वह जिम्मेदार नही था । इसलिए उसे कुछ सहानुभूति, उचित पोषक भोजन, व्यक्तिगत देख-रेख और शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक ढग के इलाज की आवश्यकता है। मनोविज्ञान के विशेषज्ञ उसकी परीक्षा करते है और अनत धैर्य के साथ उसके पुराने इतिहास का निरीक्षण करते है । हर कोई यह कहता है कि जेल को सुधार-स्थान बनना चाहिए। जेल मे उसका अस्थायी रूप से रहने का मतलब यह होना चाहिए कि वह एक अच्छा नागरिक बन गया है।

अन्य देशो मे ऐसी समितियॉ है, जो मुक्त कैदियो की बाद मे देख-भाल करती है। ये समितियॉ जेल से उसकी रिहाई के बाद उसे रोजगार दिलाने और उसे अपने पॉव पर खडा होने मे आवश्यक सहायता देने के लिए, बनाई जाती है। जब वह जेल मे अपनी सजा काट रहा होता है तो उसे कई तरह की सुविधाएँ दी जाती है । वह अपने परिवार के लोगो, अपने नातेदारो और अपने मित्रो को पत्र लिख सकता है और उनसे मिल भी सकता है । यदि वह जेल-नियम के अनुसार आचरण करता है, तो उसे पैरोल (अस्थायी रिहाई) पर भी छोडा जा सकता है । सार यह कि समाज और राज्य दोनो ही उसके सुधार के लिए बहुत ही चिंतित होते है।

यह अत्यन्त विरोधाभास की स्थिति है और सामान्य जनो के बारे मे तो इसका खयाल भी नही किया जा सकता । लाखो-करोडो स्त्री-पुरुष,

जो अच्छे नागरिक है, बडा कष्टमय जीवन बिता रहे हैं। बडी बुरी अवस्थाओ मे रहते है , उनके सिरो पर महज एक छप्पर का ही आश्रय है। कभी-कभी वे कौडी-कौडी के मुहताज हो जाते है। वे भी मानव-प्राणी है, उनमे भी मातृत्व की प्यार-भरी भावनाएँ है, लेकिन वे अपने बच्चों को पोषक भोजन नही दे पाते। वे उन्हे शिक्षा नही दे सकते, पूरे कपडे भी नही पहना सकते। इसपर भी लोग कानून के अनुसार और अपराधहीन विशुद्ध जीवन बिताते है।

समाज उनके बारे मे रत्तीभर भी चिता करता जान नही पडता। कोई भी उन्हे सहायता देने का खयाल नही करता। सहृदय स्त्री-पुरुषो की ऐसी समितियाँ भी हमारे देश मे नही है, जो आवश्यकता के समय उनकी सहायता कर सके। मै समझता हूँ कि समाज वस्तुत इन लोगो से यह कहता है, "अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी चिता की जाय तो हमारे ध्यान को आर्कषित करने की शर्त यह है कि तुम अपराध करो, जिससे तुमको पकडकर मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जा सके। वहाँ उससे किसी भी अपराध के लिए छ मास से लेकर पाच बरस तक की कोई भी कैद की सजा हासिल करो और तब तुम देखोगे कि हम किस तरह तुमपर कृपा-वृष्टि शुरू करते है। हम तुम्हारे रहने को साफ-सुथरा कमरा देगे, तुम्हे काफी अच्छी खाट भी दी जायगी, दिन-प्रतिदिन तुम स्वस्थ रहो, इसकी देखभाल के लिए डाक्टर-कम्पाउडर मौजूद होगे, और अगर कही तुम्हे कोई भयकर बीमारी हो गई तो तुम्हे उचित खुराक मिलेगी और साथ ही रात-दिन चिता के साथ इलाज भी होगा।

"अगर तुम अपढ होगे तो तुम्हे पढाने के लिए भी कुछ प्रबध होगे और तुमको किसी-न-किसी दस्तकारी की भी तालीम दी जायगी। तुम एक अच्छे दर्जी या एक अच्छे बढई या एक अच्छे लोहार भी बन जाओगे, जिससे , जब तुम जेल से निकलो तो अच्छी कमाई करने के लायक हो जाओ, और तुम देखोगे कि इसी मतलब की समितियाँ तुम्हे एक अच्छा घर बसाने के लिए हर प्रकार की मदद करने को तैयार है। लेकिन,

याद रखो कि यह सब तभी होगा, जब तुम पहली कही शर्त को पूरा करोगे। पहले सजायाफ्ता बनो और तुम देखोगे कि तुम्हे मदद पहुँचाने के लिए हर कोई कितना चितित है। हम तत्परता-पूर्वक तुम्हारे पक्ष मे यह कहेगे कि यद्यपि मैजिस्ट्रेट ने तुम्हे कैद की सजा दी है, तथापि यह कतई तुम्हारा दोष नही था। तुम तो वस्तुत रोगी थे और सभवत असावधानी के कारण तुमने वह कार्य किया, जो तुमको मैजिस्ट्रेट के पास ले गया और उसने तुमको जेल मे नही भेजा, बल्कि उसने तुमको इलाज की जगह पर भेजा है।"

कुछ दिन हुए, मै पजाब के एक जिले मे गया था। उस शहर के अस्पताल मे सबसे बढिया और आकर्षक मुझे जेल का अस्पताल लगा। वह बहुत ही खूबसूरत बना हुआ था, हवा और रोशनी का उसमे बढिया प्रबध था, बीमारो के लिए वहाँ बहुत-से बिस्तर थे और उनकी देखभाल के लिए समझदार कार्यकर्त्ता भी थे। लेकिन उस चहार-दीवारी के बाहर नगर के कथित स्वतत्र शहरियो के लिए नाममात्र की चिकित्सा-सुविधाएँ थी। उनके अस्पताल की बडी बुरी हालत थी। अस्पताल मे रखे जाने वाले बीमारो का कमरा बडा गदा और तग था। बीमारो को अपने लिए निजी खाना मगाना पडता था। मुफ्त खुराक का कोई प्रबध नही था। नर्स भी वहाँ कोई नही थी। हर चीज जितनी बुरी हो सकती है, वहाँ थी और इतने पर भी ये लोग स्वतत्र नागरिक थे और इसलिए उनके बारे मे कोई भी चिता करने वाला नही था।

यही विचार बच्चो के बारे मे भी कई बार मेरे मन मे आये है। हम उन्हे बाजारो और गलियो मे देखते है। वे गदे और मैली दशा मे मारे-मारे फिरते है, उनकी देखभाल भी कोई नही करता। लेकिन ऐसे बहुत-से लोग है, जो अपराधी बच्चो के कल्याण की चिता करते है। यहाँ फिर वही पहली शर्त हर बच्चे पर लागू हो जाती है कि वह पहले किसी की जेब काटे, तब वह शिशु-न्यायालय मे लेजाया जायगा और जिस क्षण वह वहाँ पहुँचेगा, उसके प्रति दया के द्वार खुल जायगे। वह एक अच्छे-से घर मे रखा जायगा। वहाँ उसे स्वास्थ्य-सबधी शिक्षा देने के लिए

शिक्षक होगा, और सभव है कि वह बढिया स्काउट भी बन जाय । उसे किसी दस्तकारी की शिक्षा दी जायगी, पढाया-लिखाया भी जायगा, आदि-आदि । जब वह अठारह बरस की आयु के बाद उस घर से निकलेगा तो वह सच्चे मानो मे अच्छा नागरिक बनने योग्य हो जायगा । लेकिन इस सबके लिए पहली शर्त हमेशा यही होगी—पहले गिरहकट बनो !

यह सब अजीब मजाक-सा लगता है । मै समझता हूँ कि हम सदा असामान्य स्थितियो से क्षुब्ध होकर काम करते है। अपराधियो और गुनहगारो के साथ इतना दुलार दिखाने और उनके सुधार की आवश्यकता तथा उनके प्रति कोमल-व्यवहार दर्शाने मे बडा भारी खतरा निहित है । उनके दुष्कृत्यो के कारण जिन्हे हानि पहुँचती है, उनके बारे मे कोई सोचता तक नही । सभव है, उन्होने एक परिवार का सबकुछ चुरा लिया हो । चोर को सजा मिलती है और वह उस घर मे जाता है, जिसका आज के दिन गलत नाम जेल है और समाज उस परिवार के विषय में तनिक भी चिता नही करता, जिसे उसने लूटा था । हानि सहन करने वाले को उसकी क्षतिपूर्त्ति के लिए किसी सार्वजनिक कोष से एक दमडी तक नही दी जाती। सजायाफ्ता के प्रति हमारी सहानुभूति उमड पडती है और हम उसका सुधार करने की चिता करने लगते है, लेकिन उसके शिकारो को हम पूर्णतया भूल जाते है, उनके प्रति कोई भी सहायता का हाथ नही बढाता। मै खुद भी मृत्युदड के खिलाफ हूँ, लेकिन हत्यारो के बारे मे तो यह सारी चर्चा की जाती है, परन्तु उन बच्चो के विषय मे एक शब्द भी सुनने को नही मिलता, जिन्हे उन हत्यारो ने पितृहीन या मातृहीन कर दिया था, यह बडे ही दु ख की बात है ।

पिछले कुछ बरसो के दौरान मे, जब सभी जगह खाने-पीने की भारी कमी थी और लाखो परिवार खरीदने की सामर्थ्य न होने के कारण उचित खुराक भी नही प्राप्त कर सकते थे, मै बगाल की जेलो मे देखा करता था कि वहाँ सप्ताह मे दो बार हर कैदी को बढिया भोजन दिया जाता था ।

उसके भोजन मे चावल और दाल , भाजियाँ और चटनी तथा मीठे तेल मे बनी मछली या मास होता था । बगाल के मध्यवर्ग के ७० प्रतिशत परिवार उन दिनो ऐसा भोजन प्राप्त करने मे असमर्थ थे ।

यह सब कहने का मेरा मतलब यह नही कि कैदियो को भूखो मारा जाय, लेकिन लगता है कि जो-कुछ हम कर रहे है, वह आवश्यकता से ज्यादा है । निस्सदेह अपराधियो को सजा देते समय उनकी परिस्थितियो मे भेद करने का काम मैजिस्ट्रेट का है । मान लीजिए, एक आदमी है, जो अपने परिवार के भूखे बच्चो के लिए एक रोटी चुराता है । ऐसे व्यक्ति को समझा-बुझा कर या चेतावनी देकर भी छोडा जा सकता है । लेकिन दूसरा है, जो केवल लोभवश ही ऐसा करता है या अपनी किसी आयोजित योजना को पूरा करने के लिए दूसरे लोगो के सिर फोडता है, वह वस्तुत किसी ठोस दड का अधिकारी है । उसे यह महसूस कराना होगा कि अपराध करने से लाभ नही होता और कानून पालन करने के लिए ही बनाये जाते है ।

भारत के प्रत्येक भाग मे मैने कई जेलो को देखा है और मैने अक्सर सोचा है कि हम अपराधो और दुष्कर्मों के प्रति उदारता दिखा कर बडा भारी खतरा उठा रहे है । जहा पुराने जमाने मे कैदियो के साथ बहुत ही बेरहमी और बर्बरता के व्यवहार की रीति थी, वहाँ आज के दिन मुझे यह अजीब-सा लगता है कि एक आदमी, जो तकलीफो मे पडा है, वह सहज ही ख़याल करले कि कोई अपराध कर लेना फायदेमद होगा, क्योकि अपराधी बन जाने पर कुछ महीनो, या एक अथवा दो बरस के लिए भारतीय गणतत्र का मेहमान बनने का मौका हो जायगा और उस मेहमानी के दौरान मे पूरी रक्षा के साथ सुखकर और नियत्रित जीवन के दिन कटेगे । इसपर दयावान सरकार अच्छे खाने, रहने और चिकित्सा आदि प्रबध भी करेगी । वर्तमान मे जेलो को इतना सुखकर बनाने मे निश्चय ही बड़ा भारी खतरा है । जब मै जेल मे था तो मैने कइयो को बारबार वहाँ आते देखा था, क्योकि उन्हे जेल का जीवन ज्यादा लाभकर लगता था।

## १०

# अदालतों में झूठी गवाहियां

अदालतो मे झूठी गवाही देने की बुराई बहुत बढी हुई है । हर वकील उसे जानता है । कुछ अनुदार लोग तो यहाँ तक कहते है कि बहुत से वकील बेईमानी से इसको बढावा भी देते है और झूठी गवाही देने के भागीदार होते है । झूठी गवाही देने की कोई सीमा दिखाई नही देती । उदाहरण के लिए मुझे ही एक ऐसे निर्लज्ज मामले का अनुभव है, जिसमे दीवानी के एक मुकदमे मे दोनो फरीको के बीच यह झगडा था कि दो जीवित व्यक्ति—एक पुरुष और एक स्त्री—पति-पत्नी थे अथवा मा-बेटे । दोनो ही जीवित थे और किसी भी फरीक की ओर से उन्हे अदालत मे पेश नही किया गया था । बहुत-से लोग आये और जिस ओर से उन्हे पेश किया गया था, उसके पक्ष मे कसम खाकर गवाही दे गये। जज ने दोनो ओर की गवाहिया सुनकर एक ओर के गवाहो को तरजीह दी और उसीके अनुसार फैसला दे दिया। अपील सयोग से न्यायाधीश सुलेमान तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक और जज के सामने आई। मैने कहा कि निचली अदालतो मे जज ने बचपन की-सी बात की है और उन परिस्थितियो मे उसका एक दर्शक बने रहना मूर्खतापूर्ण रहा है । मैने सुझाया कि अगर वह दोनो व्यक्तियो को बुलाकर सीधे तरीके से कुछ प्रश्न पूछ लेता तो बिना किसी कठिनाई के सच्चाई निकल आती । इस बात का न्यायाधीश सुलेमान पर, जो प्राचीन-काल के सुलेमान की भावना से प्रेरित होकर कार्य कर रहे थे, काफी असर हुआ और उन्होने उस मामले को मातहत अदालत को इस आदेश के साथ लौटा दिया कि दोनो व्यक्तियो से सीधे सवाल कर लिये जाय । मुझे अच्छी तरह याद है कि बिना किसी खास दिक्कत के सचाई सामने आ गई ।

× × ×

एक और भी मुकदमा था जिसकी अपील १९१९ मे इलाहाबाद हाईकोर्ट

के उन दिनो के नये आये हुए मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेअर्स ने एक अन्य जज के साथ सुनी थी । अब भी वह दृश्य मेरे सामने आ जाता है जो सर ग्रिमवुड ने प्रणय के उस मामले मे हुई लम्बी-चौडी गवाहियो को पढकर प्रस्तुत किया था । दोनो दल मुसलमान थे । वादी एक नौजवान था । वह उस नवयुवती के अपनी औरत होने का दावा करता था, जो उस मुकदमे मे प्रतिवादी न० १ थी । उसने अपनी बीवी के साथ वालो पर, जो अन्य प्रतिवादी थे, यह दोष लगाया कि वे उसे (बीवी को) उससे दूर रखने मे मदद कर रहे है । वादी का कहना था कि उस नवयुवती के साथ अमुक रात को ९ बजे इस्लामी तरीके पर एक काजी, वकीलो और गवाहो के सामने उसकी शादी हुई, जिसमे बहुत-से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए थे । प्रतिवादी ने इस प्रकार की शादी से बिलकुल इन्कार कर दिया । इसके बजाय उसने कहा कि उसी दिन रात के ९ बजे शहर के दूसरे हिस्से मे , एक दूसरे मकान के अन्दर प्रतिवादी न० २ के साथ एक क़ाजी, वकीलो और गवाहो के सामने विवाह हुआ, जिसमे बहुत-से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए । उसने जो हाल बताया, सही-सा था । उस औरत ने कहा कि यह बिलकुल ठीक है कि उसकी मा वादी के साथ ही शादी करना चाहती थी, लेकिन वह खुद इस विचार से ही नफरत करती थी, हालाकि उसे खामोश रहना पडता था । बाद को जब उसने देखा कि मामला आगे बढता जा रहा है और शादी की तारीख तक तय हो गई है तो वह अपनी चाची के पास दौडी गई और उससे अपनी मदद करने के लिए कुछ करने को कहा । उसने अपनी चाची को यह भी बता दिया कि शादी करने के लिए उसने प्रतिवादी न० २ को अपने दिल मे जगह दे रखी है, वही उसकी पसन्द का नौजवान है । इसलिए चाची को शादी का इन्तजाम करना ही होगा, वरना वह आत्महत्या कर लेगी । चाची ने उसपर तरस खाया और उसका नतीजा जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह हुआ कि उसी तारीख को दूसरी जगह प्रतिवादी न० २ के साथ उसकी शादी हुई । इस प्रकार ये दो प्रतिद्वन्द्वी कहानिया दो शादियो के

बारे मे थी और विश्वास कीजिए कि दोनो ओर से ५० से भी अधिक गवाहिया अदालत मे अपनी आखो के सामने इस या उस शादी होने के प्रमाण मे हुई। उन गवाहियो के निष्पक्ष होने के सबन्ध मे देखने से ही कोई मुद्दा कायम नही किया जा सकता था। उनमे से बहुत-से लोग दोनो के ही रिश्तेदार और मित्र थे। ऐसे मामले मे मै स्वय जज होना पसन्द न करता और मेरा यह खयाल है कि गवाहिया इस मुकदमे का अन्तिम निर्णय कराने मे सहायक नही हुई, बल्कि सब मिलाकर अन्य घटनाएँ ही काम आई। जब नीचे की अदालत मे मुकदमा चल रहा था, उस स्त्री के बच्चा पैदा हो गया। उसका पिता वादी न० २ था और उस समय तक, जबकि सर ग्रिमवुड मेअर्स के सामने अपील पहुची, एक और बच्चा हो गया। हाईकोर्ट के जजो ने साफ कह दिया कि मुकदमे मे कुछ भी सही-गलत हो, वे उन बच्चो को किसी तरह भी जायज घोषित नही कर सकते।

× × ×

अदालतो मे झूठी गवाहियो को छाटना बेकार है, किन्तु एक दृष्टि से उनमे से कुछ वास्तव मे शानदार होती है। कुछ तो हिमालय की चोटियो की तरह होती है। भोवाल सन्यासी का मामला एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। परन्तु मै और भी कुछ ऐसे मामले जानता हू, जो सूझबूझ के मधुर और मनोरजक खेल तथा मनुष्य की कल्पना-शक्ति की बडी भारी मिसाले कही जा सकती है। मै यहा दो मामलो का उल्लेख करूगा। एक इलाहाबाद हाईकोर्ट मे मेरी वकालत के शुरू के दिनो मे १९१६ या १९१७ का है और दूसरा कुछ बाद का। दोनो मे एक ही प्रश्न उठा था। पहले मुकदमे का थोडा परिचय देना आवश्यक होगा।

यह मामला एक अच्छी-खासी रियासत के सम्बन्ध मे था, जो राजा की मौत के बाद कोई लडका न होने के कारण उसकी विधवा के हाथ आई थी और उसके मरने के बाद वह जायदाद कुछ दूर के घरवालो को पहुचनी थी। इस प्रकार के दूर के उत्तराधिकारियो को अलग करने के लिए गोद

ले लेने का एक तरीका होता है। एक बालक के साहसी पिता ने रानी को अपने पुत्र को गोद लेने के लिए इस आशा से फुसलाया कि उसका बच्चा गोद ले लिया जायगा तो उसका पिता और स्वाभाविक सरक्षक होने के कारण वह बहुत वर्षो तक जायदाद का लगान , किराया आदि वसूल करके मुनाफा उठाता रहेगा। लडका गोद ले भी लिया गया, लेकिन फौरन ही कानूनी तथ्य के आधार पर झगडा शुरू हो गया। काफी लम्बी मुकदमेबाजी हुई और अन्त मे हाईकोर्ट ने गोद लेना बहाल रखा। पिता ने खुशिया मनाई। इसी बीच रानी की मृत्यु हो गई और लडका गोद लेने की तारीख से ही जायदाद का स्वामी बन गया और उसका पिता वास्तविक अधिकारी। मुकदमे के दौरान मे इस बालक के विवाह का कोई सवाल ही नही था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अकस्मात बीमार पड गया और कुछ ही दिनो मे मर गया। बाप की सारी आशाओ पर पानी फिर गया और वे विरोधी, जिनसे गोद लेने के मामले मे वह इतने दिनो तक लडा था, अव स्वत जायदाद के मालिक बननेवाले थे। इस विपदा को हटाने के लिए कुछ-न-कुछ तो किया जाना चाहिए था। बच्चे के दाह-सस्कार के बाद, कहना चाहिए कि एक 'युद्ध-परिषद्' बन गई, जिसे यह विचार करना था कि उस सकट को दूर करने के लिए क्या उपाय काम मे लाये जाय। विचार किया गया कि एक यही तरकीब कारगर हो सकती है कि उस अविवाहित बालक की एक विधवा तैयार की जाय और यह जाहिर किया जाय कि उस (बालक) की मृत्यु के बाद जायदाद स्वाभाविक रूप से उसकी उस विधवा को पहुच गई है। उस समय कोई लडकी निगाह मे न थी, किन्तु यह तो एक मामूली-सी बात थी। फौरन ही यह तय किया गया कि एक नाम सोच लिया जाय और सयुक्त प्रात के जाब्ता माल के अनुसार गाव के अधिकारियो से उसकी सूचना फौरन करा दी जाय। लीलावती नाम छाट लिया गया और गाव के अधिकारियो से , जो षड्यत्र मे शामिल थे, फौरन खाना-पूरी क़र देने को कह दिया गया। तीन ने तो उसी रात यह रिपोर्ट कर दी कि नवयुवक

राजा की मृत्यु हो गई है और वह अपने पीछे अपनी विधवा लीलावती को छोड गया है। चारो ने अगले दिन इसकी सूचना कर दी।

स्वभावत विपक्षी दल मे इस काड से तहलका मच गया। न कोई विवाह हुआ था और न कोई लीलावती ही थी। सारा-का-सारा मामला काल्पनिक था और इस आशय की दरख्वास्ते दे दी गई। नियमानुसार माल अदालत को मामले की सरसरी जाच करने के लिए कहा गया ताकि गाव के सरकारी कागजो मे ठीक अमल-दरामद हो सके।

अब पिता को एक लीलावती प्राप्त करने को कहा गया। किसी लडकी को लीलावती बनाना जरूरी हो गया। यहा यह बताना पडेगा कि इस व्यक्ति के दो विवाह हुए थे। उसकी पहली स्त्री से वह लडका हुआ था, जो गोद ले लिया गया था और जिसका यह किस्सा है। उसकी पत्नी तब मर गई थी। उसने दुबारा शादी कर ली थी और उससे कहा जाता है कि चार बच्चे हुए थे। इस स्त्री की एक अविवाहित छोटी बहन थी। सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया—और उसमे उसके पिता की भी राय थी—कि इसी लडकी को जब जरूरत पडे लीलावती बना कर खडा किया जाय। इस प्रकार काम आराम से चलता रहा। गवाहिया प्रस्तुत कर दी गई। मुझे ठीक से याद नही है कि लीलावती को कभी अदालत मे पेश किया गया हो, शायद नही किया गया था। अत मे माल अदालत ने कह दिया कि उन्हे सदेह है, इसलिए वह उसके नाम का इन्दराज नही करेगे। यह पहली अदालत मे हुआ। इस सबमे कुछ समय लग गया। इस बीच लीलावती बडी हो गई और उसके पिता को उसकी शादी की फिक्र हुई। उसने कह दिया कि वह अपने दामाद पर अहसान करने को भी इस दिलचस्प नाटक मे अपनी कन्या को लीलावती का पार्ट अदा करने के लिए अविवाहित नही रख सकता। खुशामद के बाद भी वह अपने विचार से नही डिगा और उस लडकी का विवाह यथा नाम तथा गुण वाले शैतान-सिह से हो गया।

अब विवाह के बाद एक अन्य लीलावती की आवश्यकता हुई, क्योकि

एक बडी अदालत मे माल की कार्रवाई चल रही थी और किसी समय भी लीलावती को अदालत मे हाजिर करने के लिए कहा जा सकता था। इसलिए एक और छोटी लडकी को छाटा गया। उससे भी कुछ न बना। अपील भी माफिक न हुई और जायदाद की वापसी के लिए एक दीवानी दावा दायर करना जरूरी हो गया। दुर्भाग्य अकेला कभी नही आता। इस बीच लडके का पिता मर गया। सट्टेबाज मामले मे आगए और उन्होने सोचा कि मामला खत्म हो गया और अगर कुछ कारगर उपाय न किये गए तो सारा लगा-लगाया रुपया बेकार जायगा। मुझे यह पता नही कि उन्होने यह कैसे किया, लेकिन उन्होने गोद गय लडके की सौतेली मा को लीलावती बनने को राजी कर लिया और उसने ऐसा ही किया। स्वर्गीय नाबालिग स्वामी की विधवा की हैसियत से उसने सम्पत्ति पर दावा दायर कर दिया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब लडका मरा था तो उसकी उम्र १५-१६ वर्ष की थी और लीलावती भी उसी उम्र की बनाई गई थी। यह मुकदमा लडके की मृत्यु के ४-५ साल बाद शुरू हुआ था, किन्तु यह स्त्री, चार बच्चो की एक अधेड उम्र की औरत थी। वह तमाशे की नायिका बनने को राजी हो गई, लेकिन खिलाडी निराश न थे। मुकदमा शुरू हुआ। दूसरी तरफ भी सट्टेबाज लोग थे। असली उत्तराधिकारी तो गरीब लोग थे, जो भूखे-नगे थे और एक नामी सट्टेबाज ने थोडा-सा रुपया और करीब ३०० एकड भूमि देकर उन्हे खरीद लिया था। दीवानी मुकदमे मे जैसे हुआ करता है, बहुत वक्त लगा। करीब १०० गवाहिया हुईं। इनमे से ६० तो वादी की ओर से हुईं, जिन्होने शपथपूर्वक कहा कि लडके का विवाह हुआ था। कुछ ने तो यहाँ तक कहा कि वे उसकी बारात मे गये थे और पाणिग्रहण के समय उपस्थित थे, आदि-आदि। दूसरी ओर, प्रतिवादियो ने इस आशय की साक्षिया दी कि विवाह हुआ ही नही, लडका बहुत छोटा था, किसी ने भी विवाह की बात नही सुनी। स्कूल के अध्यापक ने गाव के स्कूल का वह रजिस्टर दिखलाया, जिसमे जिस दिन विवाह हुआ बताया गया था, लडका हाजिर था। स्कूल के रजिस्टर मे जहा तक

मेरा खयाल है, हाजिरी झूठी बनाई हुई थी । जो हो, वहा हाजिरी थी । प्रतिवादियो ने लीलावती की शारीरिक परीक्षा के लिए भी प्रार्थना की, जिससे देखने पर उसकी उम्र की शनाख्त हो सके और यदि आवश्यकता हो तो आतरिक जाच भी की जाय । यह प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया और एक डाक्टरनी कमिश्नर की हैसियत से इस कार्य के लिए नियुक्त हुई । वह मकान के अन्दर गई, फौरन ही लौट आई और अपनी रिपोर्ट दे दी । उसने अपनी रिपोर्ट मे लिखा कि मकान के अन्दर उसने एक स्त्री को देखा जिसका नाम लीलावती बताया गया । वह स्त्री सिर से पैर तक ढकी हुई थी और उसका केवल मुँह और हाथ खुले हुए थे, जो दिखाई पडते थे । उसने लिखा कि बडी शिष्टता के साथ उसने उस स्त्री से कपडा हटा कर थोडी अपनी बाह, पेट और शरीर के अन्य भाग दिखाने को कहा, किन्तु उस स्त्री ने दृढता के साथ वैसा कुछ करने से इन्कार कर दिया । इतना ही नही, उसने धमकी दी कि वह डाक्टरनी को पीट देगी । डाक्टरनी ने बताया कि वह उस स्त्री का चेहरा और हाथ देखकर सिर्फ राय ही कायम कर सकती है । चेहरे से वह अधेड उम्र की जान पडती थी और हाथो से पता चलता था कि वह शारीरिक परिश्रम करने की बहुत आदी है । मुझे ध्यान पडता है कि उस मामले मे वही निर्णायक पहलू हुआ और परिणाम यह निकला कि पहली अदालत मे लीलावती हार गई और इलाहाबाद हाईकोर्ट मे की गई अपील मे भी, जिसमे मै उसके विरुद्ध डाक्टर सप्रू के साथ छोटा वकील था, वह असफल रही । उस समय छोटी उम्र का होने के कारण सारा मुकदमा मुझे हमेशा याद रहने वाला और यकीन न करने-जैसा लगा ।

× × ×

दूसरा मामला, जो कुछ वर्ष बाद सामने आया, एक लडकी से सबधित था, वह अनाथ हो गई थी, लेकिन उसके पास काफी सम्पत्ति थी और वह सम्पत्ति उसके पिता के भाई, चाचा, के सरक्षण मे थी । इस चाचा ने उसका विवाह पडौस मे ही समान प्रतिष्ठावाले परिवार में एक नवयुवक के साथ

कर दिया। लडकी बहुत बडी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, इसलिए उससे हर कोई विवाह करने को आतुर था। मुझे सदेह है कि उसका विवाह निश्चित करते समय उसके चाचा ने निजी लाभ के लिए वर के पिता से अवश्य कुछ सौदेबाजी की होगी। लेकिन उसके चाचा से भी शायद मामला 'हीरे से हीरा काटने' का हुआ और भारी सम्पत्ति के साथ उस लडकी को अपनी पुत्रवधू बनाकर वह व्यक्ति सौदे से मुकर गया। चाचा अपनी मूर्खता पर रोता रह गया। यही उन घटनाओ की शायद भूमिका बना, जिनका मै उल्लेख करने जा रहा हूँ।

मामला यो शुरू हुआ कि उसके चाचा ने अपनी नाबालिग भतीजी और उसकी जायदाद के सरक्षण के लिए जिला जज के यहाँ दरख्वास्त दी। दरख्वास्त मे लिखा कि उसका पति नाबालिग—स्कूल का विद्यार्थी था और उसका (लडकी का) ससुर उसकी उपेक्षा तथा सम्पत्ति का बेहद बुरा प्रबन्ध कर रहा था, साथ ही मुनाफे का गोलमाल भी किया जा रहा था। इसलिए कानूनी सरक्षण जरूरी था और उस लडकी की देखरेख करने के लिए उसका चाचा ही उपयुक्त व्यक्ति था, जो विवाह से पूर्व भी देखभाल करता था।

जिले के उस नगर मे, जहा यह दरख्वास्त दी गई थी, जज की अदालत नही थी। जिला जज पन्द्रह दिन मे एक बार वहा इस प्रकार की दरखास्ते सुनने जाया करता था। इस प्रकार एक शनिवार को एक ओर चाचा, उसका बेटा और वकील तथा प्रतिपक्ष मे दूसरी ओर लडकी का ससुर और उसका वकील उस मुकदमे के सिलसिले मे जिला जज के सामने खडे हुए। ज्योही मुकदमा शुरू हुआ, चाचा के वकील ने दुखी आवाज मे जज से कहा कि अब दर्खास्त की सुनवाई की आवश्यकता ही नही रह गई, क्योकि दुर्भाग्यवश लडकी का देहात हो गया है। प्रसगवश मै कह सकता हूँ कि इस देहात का कानूनी अर्थ यह हुआ कि सम्पत्ति लडकी के पिता के कुटुम्ब को लौटनी चाहिए और सबसे निकट का उत्तराधिकारी उसका चाचा था।

चाचा के वकील की बात सुन कर जज ने स्वभावत सवाल की निगाह से दूसरी तरफ देखा और तुरन्त ही ससुर ने कहा कि तीन दिन हुए, जब मै घर से आया हूँ । उस समय पुत्रवधू बिलकुल ठीक थी, उसकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह बात बिलकुल झूठ है । जज चक्कर मे पड गया और मामले की १५ दिन आगे की तारीख लगादी । साथ ही यह आदेश भी दे दिया कि लडकी को अदालत मे उपस्थित किया जाय।

पखवाडा बीता । अदालत बैठी । ससुर उपस्थित न हुआ, लेकिन उसके वकील ने एक तार पढ कर सुनाया, जिसमे ससुर तथा पुत्रवधू के बीमार होने की सूचना थी और अदालत से आगे की तारीख डालने का निवेदन किया गया था । इसमे जज का सदेह बढा । उसने तारीख तो स्थगित कर दी, लेकिन यह आदेश दिया कि अगली पेशी मे लडकी को अवश्य उपस्थित किया जाय, चाहे ससुर आ सके या न आ सके । इसके बाद दोनो पक्ष फिर चले गए ।

अगली पेशी पहली पेशी से ठीक चार सप्ताह बाद पडी । चाचा अपने बेटे के साथ हाजिर था । दूसरी ओर ससुर के स्थान पर खुद लडकी का पति अपने मामा के साथ उपस्थित हुआ । मुकदमा शुरू होते ही जज ने पूछा कि लडकी हाजिर है ? वकील ने जवाब दिया कि वह आ गई है और अदालत के अहाते मे ही एक पालकी मे बैठी हुई है। जज ने चाचा से कहा, "तुम्हारी भतीजी वहाँ बाहर है । जाओ, उससे मिल आओ ।" चाचा अपने पुत्र के साथ बाहर गया और दो मिनट मे ही यह चिल्लाते हुए लौट आया, "वह उसकी भतीजी नही है । उसकी भतीजी तो एक महीना हुआ तभी मर चुकी है । अदालत के साथ भारी षड्यत्र किया गया है और उसकी भतीजी के स्थान पर कोई और लडकी लाई गई है । बाहर पालकी मे बैठी लडकी तो कोई बिलकुल अजनबी है ।" जज बडे चक्कर मे पड गया । उसे बडा गुस्सा आया । उसने एक आदेश लिखा, जिसमे कहा कि इस प्रकार की स्थिति सिर्फ भारत मे ही पैदा हो सकती है, और कही नही । उसने यह भी लिखा कि इस रहस्यपूर्ण मामले

मे बाहर पालकी मे बैठी लडकी के सम्बन्ध मे कुछ भी निर्णय करना असम्भव है, लेकिन वह लडकी के पति को उसका सरक्षक नियुक्त करता है, भले ही वह लडकी कोई भी हो और मामले को यही छोड दिया।

स्थिति कुछ वर्षो तक इसी तरह रही। चाचा कोई और कदम न उठा सका। इस बीच लडकी की सम्पत्ति का उपभोग पति के परिवार-वाले करते रहे।

अत मे छ वर्ष के बाद चाचा ने सम्पत्ति की वापसी के लिए दीवानी अदालत मे एक दावा दायर किया। दावे मे कहा गया कि भतीजी मर चुकी है और उसकी मृत्यु के बाद हिन्दू कानून के अनुसार सम्पत्ति उसे मिलनी चाहिए और वह उसे पाने का पूर्ण अधिकारी है। उसने सरक्षण के मुकदमे का उल्लेख किया भी और कहा कि मुकदमे के चार सप्ताह के दौरान मे लडकी के पति ने दुबारा विवाह कर लिया और नई स्त्री अमुक गाव के एक व्यक्ति लक्ष्मीनारायण की लडकी है। उसने पूरा विवरण दिया। अब वही नई स्त्री दुनिया के सामने भतीजी के रूप मे प्रकट की जा रही है।

जवाब मे चाचा के दावे को गलत बताया गया और कहा गया कि लडकी हर तरह से सही-सलामत है और जीवित है, और यह दावा अदालत के साथ भारी धोखाधडी है। इस तरह दोनो तरफ से बाते कही गई।

जिला जज के सामने वह एक हास्यजनक दृश्य बन गया। जज की आज्ञा से जब गवाह लिये जा रहे थे तो लडकी को बाहर एक पालकी मे बिठाया हुआ था और वादी की ओर से रिश्तेदार, दोस्त और परिचित, हर गवाह जा-जाकर बाहर पालकी मे झाकता और लौटकर अदालत मे शपथपूर्वक कहता कि यह वह लडकी नही है, जिसे वे जन्म से ही जानते है। वह तो कोई और है। कुछ गवाह ऐसे भी आये, जिन्होने जोर के साथ कहा कि वह लडकी लक्ष्मीनारायण की कन्या है और वे उसे बचपन से पहचानते है। तब बहुत सारे गवाह लडकी के ससुराल के गाव और पास-पडौस के आये। उन्होने शपथपूर्वक कहा कि उन्होने लडकी की बीमारी का समाचार सुना

था और वे हालचाल पूछने भी गये थे। तब उनसे कहा गया कि लडकी मर गई। बहुत-से लोगो ने कहा कि उन्होने शव अपनी आखो से देखा था। दूसरो ने तो यहा तक कह दिया कि वे शव-यात्रा मे भी गये थे और कुछ मील दूर नदी के किनारे उनके सामने शव जलाया गया था। दूसरी तरफ पति, ससुर, रिश्तेदार और बहुत से लोग आये, जिन्होने हलफ लेकर कहा कि उस परिवार मे कोई मृत्यु नही हुई और यह लडकी वही है, जिसे चाचा ने बडे ठाठबाट से शादी करके दिया था। अब रहा लक्ष्मी-नारायण। उसने कहा कि उसके तीन लडकिया थी, सब जीवित है और उसने सबका हिसाब बता दिया। मुझे याद है, उसने कहा था कि वे तीनो लडकिया भारत के तीन अलग-अलग शहरो मे है और अपने-अपने घरो मे खुश है।

मातहत जज के दिमाग की कैफियत का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है। उसने मामले को सुलझाने का भरसक यत्न किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि चाचा अपना मामला सिद्ध नही कर सका और लडकी की मृत्यु साबित नही हो सकी, इसलिए उसने मुकदमा खारिज कर दिया।

इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपील की गई और वादी की ओर से मुझे वकील किया गया। मुकदमे की मिसल बहुत बडी थी। दोनो तरफ से गवाहो की सख्या भी बहुत अधिक थी। जितना मै मामले पर विचार करता उतना ही अधिक मुझे यह महसूस होता कि मेरा मुवक्किल (चाचा) ही ठीक था। मेरे मस्तिष्क मे दो मुद्दे थे। पहला था जिला जज के सामने सरक्षण के मामले मे ससुर का व्यवहार और दूसरा, जिसकी ओर किसी का ध्यान ही नही गया था, यह था कि लडकी का इस मुकदमे मे एक गवाह की हैसियत से बयान नही लिया गया था। अपील दो विद्वान् और अनुभवी जजो के सामने पहुँची। एक हिन्दू थे, न्यायाधीश लालगोपाल मुखर्जी तथा दूसरे पारसी, न्यायाधीश बी० जे० दलाल। मैने उक्त दो मुद्दो पर ध्यान केन्द्रित कराने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु न्याया-

धीश मुखर्जी के सामने बात आगे न बढी। कभी-कभी वह एक हठी जज बन जाते थे और उनसे कोई बात मनवाना कठिन हो जाता था। उनका मस्तिष्क मेरे विरुद्ध बहुत जल्दी बन गया। न्यायाधीश दलाल की ओर से कुछ आशा बधी थी। बहुत दिनो के बाद अत मे न्यायाधीश दलाल ने मुझसे साफ-साफ कहा, "आपने जो कुछ भी कहा है उसका मुझपर प्रभाव पडा है, मै यह मानता हूँ, लेकिन मेरे सामने एक कठिनाई है। अगर आपकी बात ही सच है तो आपका मामला दायर होने मे इतनी देर होने का आपके पास क्या उत्तर है? सरक्षण के मुकदमे और इस दावे के बीच छ वर्ष से भी अधिक का समय हो गया। मुझे ऐसा लगता है कि आप एक मास के भीतर ही दीवानी अदालत मे पहुँचकर सम्पत्ति पर अपना दावा दायर करते।" मिसल मे इसका जवाब देने के लिए कुछ था भी नही। मै यही कह सका कि मेरा मुवक्किल मालदार नही है और दीवानी मुकदमा करने के लिए धन की आवश्यकता होती है—वह तो एक खर्चीला सौदा है। लेकिन न्यायाधीश दलाल को इस उत्तर से सतोष नही हुआ। उन्होने अपना नोट देते हुए लिखा कि उनके साथी जज का विचार तो प्रारम्भ से ही मेरे खिलाफ था और उनके पास भी अपने साथी से असहमत होने के लिए कोई विशेष बात नही है। परिणाम यह निकला कि खुली अदालत मे फैसला सुनाया गया और अपील खारिज हो गई।

फैसला सुनने के बाद मेरे विरुद्ध काम करने वाले एक छोटे वकील ने मुझसे कहा, "डाक्टर साहब, आप मुकदमा जीत गए।" मै आश्चर्य मे पड गया। पूछा, "कैसे?" उसने शातिपूर्वक कहा, "मै ठीक ही कह रहा हूँ। आपको पता नही कि क्या हुआ है।" मैंने कहा, "मुझे कुछ नही पता।" उसने कहा, "मेरे मुवक्किल के परिवार मे यह दशा हो गई है कि लडकी का पति मर गया, लडकी का ससुर चल बसा और लडकी के कोई औलाद नही है। वह किसी बच्चे को गोद भी नही ले सकती, क्योकि उसका पति अकस्मात मर गया और उसे गोद लेने की अनुमति प्रदान नही कर गया। वह खुद भी बहुत बीमार है और तपेदिक की तीसरी मजिल पर पहुँच

चुकी है। उसका दम किसी भी समय निकल सकता है। वह शायद चन्द हफ्ते भी जीवित नही रह सकेगी। आपको भतीजी से कोई मतलब नही, आप तो सम्पत्ति की चिन्ता ही कर रहे है। यह लडकी चाहे उसकी भतीजी हो या बनावटी, जल्दी ही कूच करने वाली है और सम्पत्ति आपको मिल जायगी। यही तो आप चाहते थे। इस प्रकार मुकदमा आप ही जीते है।" जिस ढग से यह बात कही गई थी, उससे मुझे कुछ दुख हुआ, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि हम तो अपनी सूझ-बूझ के अनुसार कार्य करते है, लेकिन ईश्वर अनेक रूपो मे अपना जल्वा दिखा देता है।

× × ×

मुझे एक और इसी प्रकार की घटना का ध्यान हो आया है। यह भोवाल सन्यासी के मुकदमे के बारे मे मुझे लदन में सुनाई गई थी। यह तो सबको मालूम ही है कि भोवाल के कुमार की पत्नी ने उसके दावे को अस्वीकार करते हुए अपना वास्तविक पति नही माना था। उसने दृढता के साथ कहा कि उसके पति की तो मृत्यु हो चुकी है और दावेदार कोई छली मनुष्य है। ढाका के मातहत जज तथा कलकत्ते के हाईकोर्ट मे वह नाकामयाब रही। तब उसने लदन मे प्रिवी कौसिल की जुडीशल कमेटी के सामने अपील की। वहा पर भी २० दिन की लम्बी सुनवाई के बाद अपील खारिज हो गई। लेकिन हुआ यह कि अपील के खारिज होने के कुछ ही दिन बाद दावेदार भोवाल का कुमार मर गया और मुझे बताया गया कि लदन मे रानी के कानूनी सलाहकार ने यह सूचना अपने प्रतिपक्षी को एक विजिटिग कार्ड पर यह लिख कर दे दी, "न्याय हो गया।" उसका तात्पर्य क्या था, पाठक स्वय समझ सकते है।

## : ११ :

# अंगूठे के निशान ने बचाया

भारत मे मुकदमेबाजी का सबसे सफल साधन तथा सब तरह के छल-कपट करने का जरिया उत्तराधिकार-कानून है, जो ज्यादातर लोगो को पसद नही है। पुराने जमाने मे गाव का समाज सभी वर्णो के परिवारो का होता था। लेकिन हर वर्ण के परिवारो का समूह आपस मे रिश्तेदारी से बधा होता था, क्योकि उन सबके एक ही पूर्वज होते थे और वह समान पूर्वज-पुरुष होता था। लडकियो की शादी दूसरे गाव मे होती थी, और वे अपने जन्म के परिवार से सम्पूर्णत अलग हो जाती थी तथा वे और उनकी सताने पिता की जायदाद की उत्तराधिकारिणी होने से वचित कर दी जाती थी। इसका कारण किसी खास रिश्तेदार को बहिष्कृत करने की इच्छा से नही था, बल्कि इसका उद्देश्य था समाज की एकता को बनाये रखना। उत्तर-प्रदेश मे अग्रेज शासको ने इस पुराने रिवाज मे हस्तक्षेप किया और लडकियो तथा उनकी सताने। को पिता के धन का उतराधिकारी माना। यह अधिकार किसी सख्त रिवाज के अनुसार ही रद्द किया जाता था, जिसको जज खुले आम कठोर और अस्वाभाविक बताते थे। जजो द्वारा बनाये इस कानून को कमजोर बनाने मे जनता कभी-कभी सफल हो जाती थी और हर प्रकार से ऐसे उत्तराधिकार के दावे को रद्द करवाती थी। अग्रेजो की अदालतो ने लडकियो को नजदीकी उत्तराधिकारी माना, लेकिन बहनो को नही माना। धोखा देने का एक आम तरीका यह होता था कि लडकी को मृत व्यक्ति की बहन बताया जाता था और उसके लडकी होने के दावे को अस्वीकार कर दिया जाता था। अगर बाप अपनी जवानी मे मरा तथा माता गर्भवती हुई, तो बताया जाता था कि माता के पिता की मृत्यु के बाद लडका हुआ, जो सप्ताह या महीने के बाद मर गया। लेकिन अतिम मालिक वही था, इसलिए लडकी बहन के उत्तराधिकार का दावा कर सकती थी। इस तरह के कितने ही

बहाने बनाये जाते थे ।

फिर उस विधवा का सवाल लीजिए, जिसका पति सयुक्त हिन्दू परिवार मे रहकर ही मरा हो। हिन्दू समाज धीरे-धीरे इस नियम का मानने वाला होने लगा था कि परिवार चाहे सयुक्त हो या न हो, विधवा को परिवार मे अपने पति का हिस्सा मिलना चाहिए, जिसका जीवन भर वह उपभोग करे। बगाल मे यही नियम है; लेकिन उत्तर-प्रदेश मे जजो ने इस नियम के प्रचार-प्रसार को रोक दिया और पुराने नियम के अनुसार तय किया कि सयुक्त हिन्दू-परिवार मे निपूती विधवा को पति का हिस्सा नही मिलना चाहिए। उस विधवा के पति का हिस्सा दूसरे पुरुषो के हिस्सो मे बाट दिया जाता और उसे परिवार के साथ रहने तथा उनके आसरे रहकर ही जीवन-यापन का अधिकार दिया जाता। इस नियम से उत्तर-प्रदेश मे बहुत मुकदमेबाजी हुई। हर मुकदमे मे सयुक्त और विभाजित परिवार का बहाना मुकदमेबाज अपनी सुविधानुसार करने लगे और इन बहानो को धोखे-बाजी तथा झूठी गवाही दिला कर सत्य साबित किया जाने लगा। गवाही मे भेद होने से अक्सर सचाई का पता लगाना मुश्किल हो जाता था। अपनी वकालत के दिनो मे मेरे पास ऐसे सैकडो ही मुकदमे आये। लेकिन उनमे से कुछ तो सचमुच ही बडे विचित्र थे, विशेष रूप से एक मुकदमा तो बडा ही मनोरजक था। अदालत मे एक लम्बे अर्से से वह चल रहा था, लेकिन अत मे सबसे बडी अदालत—लदन की प्रिवी कौसिल ने अपना निर्णय एक अगूठे के निशान पर ही दे दिया। यह किस्सा यहा बयान करने योग्य है

उत्तर प्रदेश के एक देहात मे दो भाई रहते थे और वे सचमुच एक सयुक्त परिवार के थे। उनकी जमीन-जायदाद कई गावो मे फैली हुई थी और दो जिलो मे पडती थी। प्रबध की सुविधा के ख्याल से सयुक्त परिवार की मर्यादा को कायम रखते हुए भाइयो ने यह तय किया कि एक भाई एक जिले की जमीन का प्रबध करे और दूसरा भाई दूसरे जिले की। इन दो जिलो की जायदाद का मुनाफा लगभग बराबर था और इसलिए

हर तरह से यह प्रबध प्रशसनीय और सुविधाजनक था । एक भाई के एक लडका था, दूसरे के सतान नही थी ।

सन् १९१८ ई० के जाडे के मौसम मे जब प्रथम विश्व-युद्ध समाप्ति पर था, सारे उत्तर-भारत मे इफ्लुएजा ने महामारी का भयानक रूप धारण कर लिया था । उसी बीमारी से सतान-हीन भाई की मृत्यु होगई ।

उसकी स्त्री एक पुलिस अफसर की लडकी थी । दशहरा के त्यौहार पर वह अपने पिता के घर गई थी । उसका पति बाद मे उसके पास पहुँचा । उसे इफ्लुएजा हो गया और वह एक-दो दिन के भीतर ही मर गया । कहा जाता है कि विधवा स्त्री ने उस समय यह तय किया कि वह अपने पति के घर मे रहकर परिवार की सम्पत्ति का, जो उसके पति के हाथ मे थी, प्रबध करेगी ।

जहा तक दूसरे भाई का सम्बन्ध था, हिन्दू कानून ने उसे भाई की मृत्यु के बाद सारी जायदाद का मालिक बना दिया और भाई की विधवा गुजर-बसर करने मात्र की उत्तराधिकारिणी रह गई । उसका पति के हिस्से पर कोई अधिकार न रह गया, क्योकि उसका पति सयुक्त परिवार मे मरा था और उसके कोई लडका नही था । उस जीवित भाई के आश्चर्य का अन्दाजा लगाइये , जबकि कई महीने बाद एक दिन अचानक उसे पुलिस अफसर का तार मिला । उसमे विधवा के पिता ने यह खुशखबरी दी थी कि उसके भाई की विधवा के नैहर मे लडका हुआ है । तार भेजने वाले ने लडके के चाचा को इस परिवार-वृद्धि पर बधाई दी थी । यह समाचार दूसरे भाई को वज्रपात-जैसा मालूम हुआ । इसकी पहले कोई खबर नही थी । हिन्दू परिवार-प्रथा के अनुसार बच्चा होने से दो-तीन महीने पहले कुछ उत्सव मनाया जाता है और होने वाली खुशी की खबर रिश्तेदारो को इस तरह मिल जाती है । इस मामले मे भी साधारणत भाई और उसके परिवार को यह खबर बच्चे के जन्म से पहले ही मालूम होनी चाहिए थी । यह भी आशा की जाती थी कि पुलिस अफसर सावधानी के रूप मे तथा गलतफहमी को दूर करने के ख्याल से बच्चे के जन्म से पूर्व ही इसकी सूचना

उस भाई को दे देता , ताकि अगर उसकी इच्छा होती तो वह बच्चे के जन्म के समय वहा उपस्थित हो जाता ! लेकिन ऐसा कुछ नही किया गया और यह तार एकाएक आ पहुँचा । बच्चे के चाचा को धोखेबाजी का सदेह हुआ । पुलिस अफसर के कई लडके थे और उसने सोचा कि यही हो सकता है कि यह महाशय अपने एक पोते को नाती बनाकर हटाना चाहते है । लडका पोता तो रहेगा ही , अन्तर यही होगा कि वह पुत्र का पुत्र न होकर पुत्री का पुत्र बन कर रहेगा । लेकिन इस थोडे परिवर्तन से लडके को अपने बाप के हिस्से पर दावा मिलने का हक होगा, और वह इतनी बडी भू-सम्पत्ति का हकदार हो जायगा ।

चाचा ने बच्चे को नकली करार दिया, और कहा कि उसे फरेबके लिए खडा किया गया साथ ही यह दलील पेश की कि उसके भाई की विधवा भाई के मरने के समय गर्भवती नही थी ।

इसमे बडे दावे थे । समझौता सम्भव नही था । तुरन्त मुकदमे-बाजी शुरू हो गई । मुकदमे की सारी बात बच्चे की 'असलियत' पर निर्भर करती थी । इसका सबूत देना विधवा के सिर पर आ गया । उसने सबूत मे जो बयान दिया वह अद्‌भुत था । उसने कहा कि पति की मौत के बाद ही उसे गर्भवती होने का ज्ञान हुआ । फिर भी वह अकेली अपने घर मे ही रहती थी, साथ मे कुछ नौकर थे और उसने अपना घर छोडने की चिन्ता न की । उसका पिता दूसरे जिले मे पुलिस-अफसर था । उसकी एक सहेली थी । वह एक ईसाई महिला थी , जो उसके पास अक्सर आया करती थी । एक दिन उस सहेली ने कहा कि लडके की पैदाइश पर शक किया जायगा और खानदान मे झगडा उठेगा, इसलिए यह बेहतर होगा कि गर्भवती माता को अपने गर्भ का कुछ सबूत रखना चाहिए । विधवा ने बताया कि यह सलाह उसके दिमाग मे बुद्धिमानी की जची और उसने अपनी सहेली से कहा कि वह उसे ऐसा प्रमाण दिलाने की कोशिश करे । इसपर उस ईसाई महिला ने पास के शहर की एक ईसाई प्रचार-मडली की लेडी डाक्टर से सम्पर्क किया और उसको अपने

यहा बुलाया । वह लेडी डाक्टर आई और उसने गर्भवती मा की जाच की। उसने कहा कि स्थिति सामान्य है । उनके कहने पर लेडी डाक्टर ने अपनी जाच का सर्टिफिकेट दस्तखत करके दिया और उसपर गर्भवती माता के अगूठे का निशान लगवा दिया । जब प्रसव का समय नजदीक आया तो विधवा ने पिता के घर जाना बेहतर समझा। पिता से कहा कि वह उसके पति के भाई को इस खुशखबरी की सूचना भेज दे । लेकिन किसी-न-किसी कारण से खबर भेजने मे टालमटोल हो गई और बच्चा पैदा होने से पूर्व खबर न भेजी जा सकी। यही उसका किस्सा था । प्रसव होने की गवाही दाई ने दी और दूसरे लोगो ने भी गवाही दी, जो वहा उस समय मौजूद थे।

दूसरी ओर, मृत व्यक्ति के भाई और उसके गवाहो ने यह बयान दिया कि बच्चे के जन्म होने से पूर्व किसी को इसकी खबर न थी । अगर यह बात सच होती तो जन्म से पूर्व सूचना तथा कई तरह की रस्मे पूरी की गई होती । यह दलील भी पेश की गई कि डाक्टरी सर्टिफिकेट सदेहात्मक परिस्थिति मे दिया गया है और वह एक काफी अनुभवी तथा फरेबी दिमाग की उपज है । फिर दो औरतो का मिलकर सर्टिफिकेट लिखवाने का किस्सा और भी यकीन के लायक नही है ।

लेडी डाक्टर से जज के सामने प्रश्न किये गए । उसने सर्टिफिकेट को सही बताया । लेकिन मै नही कह सकता कि दोनो पक्षो मे से एक ने भी लेडी डाक्टर को उस विधवा माता पर नजर डालने के लिए कहा जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था । यह भी नही कह सकता कि उसने सर्टिफिकेट को सही बताते हुए कहा था कि उसने एक औरत की जाच की थी, जिसने अपना वही नाम बताया था, जो सर्टिफिकेट मे लिखा था ।

विद्वान् जज सचमुच विधवा के बयान से प्रभावित नही हुआ । उसने सोचा कि यह बात बहुत सन्देह से भरी है और ऐसे मौके पर हिन्दू-परिवार मे साधारणत जो-कुछ किया जाता है, उसके बिलकुल खिलाफ

है। मै दावे के साथ कह सकता हूँ कि जज ने यह खयाल किया कि यह मामला पुलिस-अफसर के फरेबी दिमाग की करतूत है। जो हो, उसने यकीन नही किया और भाई के हक मे फैसला दे दिया। इसपर इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपील की गई और प्रधान न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेयर्स और न्यायाधीश पिग्गट के इजलास मे यह मुकदमा सुनवाई के लिए आया।

दोनो तरफ बडे अनुभवी वकील रखे गए और सुनवाई मे गवाह के बयान पर काफी बहस हुई। बहस के अत मे सर ग्रिमवुड मेयर्स ने कहा कि दोनो मे से एक पक्ष ने भी लेडी डाक्टर के बयान की सचाई पर सदेह नही किया था। निस्सदेह लेडी डाक्टर का चरित्र बहुत ऊचा था और उसने उस क्षेत्र मे काफी नाम कमाया था। प्रधान न्यायाधीश ने इस विचित्र सबूत पर आलोचना की कि दो मे से एक पक्ष ने भी और न जज ने ही लेडी डाक्टर से यह कहा कि वह मा पर नजर डाले और बतावे कि क्या वह वही औरत है, जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था। जब अनुभवी न्यायाधीशो को यह मालूम हुआ कि वह लेडी डाक्टर अब भी उसी मिशन अस्पताल मे डाक्टर है तो उन्होने सबसे अच्छा यह समझा कि उसको हाईकोर्ट मे बुलाया जाय और फिर उसीके द्वारा मा की जाच करा कर उसका बयान ले लिया जाय। यही तय हुआ, मा तथा लेडी डाक्टर दोनो को हाईकोर्ट मे बुलाया गया।

नियत तारीख आई। हाईकोर्ट मे बडी भीड थी और सचमुच वातावरण बहुत गर्म था। दोनो तरफ काफी दबी हुई उत्तेजना भरी थी। लेडी डाक्टर हाईकोर्ट मे आई। वह शील-सम्मान की प्रतिमूर्त्ति थी और जब उसने अपना बयान दे दिया तो प्रधान न्यायाधीश ने उसे नीचे के कमरे मे जाने का आदेश दिया, जहा मा बैठी हुई थी तथा उसको देखकर आने के बाद फिर बयान जारी करने को कहा। वह नीचे गई और कुछ मिनटो के बाद जब वह ऊपर आई तो वह बहुत गभीर थी। प्रधान न्यायाधीश ने पूछा कि उसने उस औरत को पहचाना या नही।

यह भी पूछा कि क्या वह वही औरत है, जिसको उसने सर्टिफिकेट दिया था ? लेडी डाक्टर ने बहुत शाति तथा दृढतापूर्वक कहा, "नही, मै नही कह सकती। मैंने उस औरत को कुछ ही मिनटो के लिए देखा था। तबसे कई वर्ष बीत गए है। मेरी याददाश्त के अनुसार जिस औरत की मैंने जाच की थी वह हृष्ट-पुष्ट थी। बहुत स्वस्थ दिखती थी और शारीरिक रूप मे वह बहुत अच्छी हालत मे थी। जिस औरत को मैंने अभी देखा है, वह बहुत दुबली है और यह साफ जाहिर है कि वह चिता से सूख रही है। मुझे बहुत दुख है, मै यह बिलकुल नही कह सकती कि यह वही औरत है या नही, जिसकी मैंने जाच की थी।" इसपर अदालत मे सनसनी फैल गई। लेकिन लेडी डाक्टर ने अपना बयान जारी रखा और कहा, "लेकिन एक बात के बारे मे मै निश्चित रूप से और दावे के साथ कह सकती हूँ। जिस औरत की मैंने जाच की थी उसके अगूठे का निशान मैंने अपने सामने ही सर्टिफिकेट पर ले लिया था।" ज्योही लेडी डाक्टर की जाच खत्म हुई, प्रधान न्यायाधीश ने कहा, " नये सबूत के कारण मुकदमा सहल हो गया है। अब यह मुकदमा अगूठे के निशान के सही होने पर निर्भर करता है।" इसके बाद न्यायाधीश पिग्गट स्वय नीचे गये और एक कागज पर उस महिला के अगूठे के तीन या चार निशान ले आये।

इजलास मे लौट आने पर अनुभवी जजो ने एक बडा दिखाने वाला शीशा मगाया , अगूठे के निशानो को देखा और पूर्ण जाच के बाद प्रधान न्यायाधीश ने कहा, "हम लोग तो सचमुच इस मामले मे साधारण जानकारी रखते है , और यह चीज विशेषज्ञो की है। लेकिन जहा तक हम लोगो की जाच का सवाल है, अगूठे के नये निशान सर्टिफिकेट के निशान से मिलते है।"मुझे अब याद नही है कि क्या कारण हुआ, दोनो मे से एक पक्ष ने भी विशेषज्ञ द्वारा अगूठे के निशान की जाच की दरख्वास्त नही दी। बहुत सभव है कि जिस पक्ष को न्यायाधीश के विचार से समर्थन प्राप्त हुआ हो, उस पक्ष के वकील उतने से ही सतुष्ट हो गए और दूसरे पक्ष के वकील ने सोचा कि यह काम सबूत पक्ष का था कि वह अगूठे के निशान की जाच विशेषज्ञ द्वारा

कराने की दरखास्त दे। जो हो, दोनो तरफ के वकीलो के दिमाग ने चाहे जो कुछ भी सोचा हो, जाच की दरखास्त नही दी गई और वह बात वही-की-वही रह गई। दोनो न्यायाधीशो मे से एक ने भी अगूठे के निशान को विशेषज्ञ के पास जाच के लिए भेजने की नही सोची और इन दोनो ने अपना फैसला नही दिया।

बाद मे एक दिन जब सारे सबूत पर बहस हुई, जिसमे दोनो न्यायाधीशो के निजी विचार अगूठे के निशान की समानता के सम्बन्ध मे भी सम्मिलित थे, न्यायाधीशो ने निचली अदालत का फैसला बदल दिया और बच्चे के हक मे निर्णय दिया।

फिर लदन की प्रिवी कौसिल मे अपील की गई और वहा जुडीशियल कमेटी ने मुकदमे को जल्दी मे देखकर फैसला कर दिया। सारे सबूत की अवहेलना कर, श्रेष्ठ न्यायाधीशो ने अपना छोटा-सा फैसला देते हुए कहा कि सारे मुकदमे का दारोमदार अगूठे के निशान पर था। दोनो पक्षों का कहना था कि लेडी डाक्टर का चरित्र सदेह से परे है, तब अगूठे के निशान की समानता होने पर ही मुकदमा खत्म हुआ।

## १२
# अविश्वसनीय किन्तु सच

वस्तुत सभी तरह की कहानियाँ आमतौर पर और जासूसी कहानियाँ तो खासतौर पर, चाहे वह रहस्यभरी हो, या काल्पनिक एक बडे भारी मुद्दे को पूरा करती है। लाखो अनगिनत पाठक उनसे मनो-रजन और सुखलाभ करते है और उसमे आश्चर्य की भावना जग जाती है। लेकिन कभी-कभी मुझे खयाल हो आता है कि जो आदमी अपनी सारी जिदगी अदालतो मे गुजारता है, कुछ समय बाद उसके लिए इस तरह का साहित्य कोई खास रुचिकर नही रह जाता, क्योकि उपन्यास या कहानी का कोई भी लेखक, भले ही उसकी कल्पना-शक्ति कितनी ही महान्

क्यो न हो, सचाई से हमेशा ही दूर रहता है। कल्पित की बनिस्बत सच्ची घटना ज्यादा आश्चर्यजनक होती है और इस कथन मे विरोधाभास भी दिखाई दे सकता है; लेकिन यह नितात सत्य है कि मानव-कल्पना मानवीय प्रक्रिया की सीमाओ तक कभी पहुँच ही नही सकती और न कोई कल्पनाशील लेखक मानव-मन की कार्यकारिता और मानव-भावनाओ के अतर्द्वद्व की गहराई तक पूरी तरह से कभी पहुँच सका है। अखबारो मे प्राय किसी खास मुकदमे के तथ्यो का सक्षेप ही प्रकाशित हो पाता है, लेकिन मुकदमा जब अदालत मे पेश होता है और दैनिक कार्रवाई मे लगातार एक के बाद दूसरा व्यक्ति ऐसी एक बात को प्रमाणित करने के लिए पेश होता है, जिसे विपरीत दिशा मे असभव ही कहा जाता तो सच्ची कहानी अतत सामने आ जाती है । इतने पर भी वह असभव ही लगती है, अतर केवल यह होता है कि वह घटना हुई जरूर थी। जब किसी सही या कल्पित गलती को ठीक करना हो अथवा किसी न्यायालय का आसरा बेकार साबित हो जाने पर गलत साबित हुआ व्यक्ति, इस दैवी आज्ञा को भूल कर कि 'बदला लेने का काम ईश्वर का है', गलती करने वालो से बदला लेने का भार खुद अपने ऊपर ले लेता है तो मानव-क्रोध और क्षोभ की भावनाएँ बेहद बढ जाती है और तब लोभ, सत्ता-प्रेम और स्त्री-प्रेम के भिन्न मुद्दो के कारण ऐसे-ऐसे कार्य, अपराध या भूले की जाती है, जिनका खयाल तक नही किया जा सकता। फारसी की कहावत है कि 'जर, ज़मीन और जोरू' ही सब अपराधो और बुराइयो की जड है । इस दृष्टि से सपत्ति-व्यवस्था के नाश से कम-से-कम यह तो लाभ होगा ही कि बुरे कामो की एक मुख्य बुनियाद नष्ट हो जायगी।

अपनी वकालत के चालीस वर्षों मे मैंने कानूनी रिपोर्टों मे कई आश्चर्यजनक कहानिया पढ़ी है; लेकिन कानूनी रिपोर्टें भी बहुधा कोरे कानूनी प्रश्नो की व्याख्या तक ही सीमित रहती है। विशुद्ध सचाई जानने के लिए व्यक्तिगत अनुभव और लोगो व उनके मामलो की निजी

जानकारी होना जरूरी है। जब मै बीते बरसो का ख़याल करता हूँ तो मुझे कई ऐसी घटनाएँ याद आती है, जो वास्तव मे अगर घटी न होती, तो उनपर कोई विश्वास ही न करता । उदाहरण के लिए आज से ३०-३५ बरस पहले की नीचे लिखी इस घटना को ही देखिए, जो उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण जिलो के एक कस्बे मे घटी थी।

एक हिन्दू परिवार था, जिसके पास काफी बडी जमीन-जायदाद थी। परिवार मे दो भाई थे, जो अलग-अलग थे; पर पास-पास के मकानो मे रहते थे। इनमे से एक अपनी पत्नी और पुत्री को छोड कर मर गया। हिन्दू-कानून के अनुसार उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसकी विधवा स्त्री और विधवा की मृत्यु के बाद उसकी पुत्री और पुत्री के बच्चो को प्राप्त होता; परन्तु पुत्री के यदि बच्चे न होते तो वह सम्पत्ति मृत व्यक्ति के भाई और उसके बेटो को मिलती। वह पुत्री अपने पिता की मृत्यु के समय अविवाहित थी। बाद मे उसकी मा और उसके चाचा ने पास के जिले के एक प्रतिष्ठित परिवार मे उसे ब्याह दिया। यह सबध हर तरह से उचित था और साधारणतया यह आशा की जाती थी कि यह विवाह सुखदायी और सफल साबित होगा। अब देखिए, किस तरह मानव-मुद्दो और प्रक्रियाओ की पेचीदगिया अपना काम करती है ।

जाहिरा तौर पर चाचा भविष्य मे होने वाली घटनाओ को होने नही देना चाहता था। उसे शक था कि जैसे ही उसकी भतीजी अपने घर मे बसने लगेगी, उसकी मा उसकी तरफ खिच जायगी और इस प्रकार मृत भाई की जायदाद का किराया व मुनाफा उसकी भाभी को मिलने लगेगा, परिणाम-स्वरूप वह खुद और उसका परिवार इस सबसे वचित हो जायेंगे। यह तो थी भावी आशका, लेकिन वर्तमान अभी उसके अनुकूल था, उसकी भाभी पूरी तरह उसके बस मे थी। यद्यपि वह निजी मकान मे रहती थी और किसी प्रकार के अनौचित्य का कोई कारण भी न था, फिर भी न जाने कैसे उसने अपनी भाभी को बस मे कर लिया था। अब उसके सामने यह समस्या खडी हुई कि किसी तरीके से अपने भाई

की जायदाद के उत्तराधिकारी को स्वाभाविक पथ से हटाया जाय। देखिए कि इसके लिए उसने क्या-क्या किया। लडकी अपने पति के घर मे रहती थी। दोनो युवा पति-पत्नी मे बहुत प्रेम था। एक त्यौहार पर लडकी को अपनी मा के घर बुलाया गया और फिर किसी-न-किसी बहाने से उसे वहा एक साल से ज्यादा रोका गया। पत्नी और पति तथा पति के रिश्तेदारो के बीच के सब पत्र रोक लिये जाते थे। पति का कोई भी पत्र पत्नी तक नही पहुँचने दिया जाता था। उसका क्षुब्ध और निराश होना स्वाभाविक ही था। इसपर हर रोज उसकी मा, उसका चाचा और हरेक आदमी उसके कान भरता रहता कि उसका पति और पति का परिवार उसकी उपेक्षा कर रहे है। इसके अलावा उसे यह भी कहा जाता कि यह विश्वस्त खबर मिली है कि तेरे पति ने तुझे छोडकर दूसरी शादी करना तय कर लिया है। आप सहज ही सोच सकते है कि ऐसी असहाय मनोदशा मे वह लडकी किस पीडा के साथ अपने दिन और रात गुजार रही होगी। अपनी मा का विश्वास करने के अलावा उसके पास और चारा ही क्या था?

उधर जिस शहर मे पति का परिवार रहता था, लडकी के चाचा ने अपने कुछ रिश्तेदारो और दोस्तो की मदद से झूठी अफवाह उडवा दी कि लडकी अपनी मा के घर मे भ्रष्ट होकर गर्भवती बन चुकी है और उसकी इस शर्म को छिपाने के लिए ही उसे वहा रोका गया है। पति एक नवयुवक था। वह और उसके घरवाले परेशान थे और उन्हे कोई रास्ता भी नही सूझता था। पति बारबार पत्र लिखता; पर कोई नतीजा न होता। उसके खतो का कभी कोई उत्तर नही मिला। वह कई बार अपनी सास के घर भी गया, सास ने बडी आवभगत की और बडे प्यार के साथ उसका स्वागत किया, खिलाया-पिलाया, एक-दो रोज वह वहा ठहरा भी; पर उसे अपनी पत्नी का कोई चिह्न तक दिखाई नही देता था। पति-पत्नी को आपस मे मिलने का कोई मौका ही नही दिया जाता था। मेरा खयाल है कि वह लडका इतना शर्मीला था कि बहुत सीधे सवाल

भी नही पूछ सकता था । लेकिन मा किसी-न-किसी झूठे बहाने से जैसे, लडकी बीमार है और बिस्तरे पर पडी है, या किसी और बहाने से लडकी की अनुपस्थिति का कारण समझा देती । नतीजा यह होता कि हर बार वह नवयुवक निराश ही लौट जाता।

इस प्रकार उस नवयुवती की आत्मा की हत्या करके और उसे पूर्णत दुखी बनाकर चाचा ने मा के साथ साजिश करनें की ठान ली, ताकि उसकी सम्पत्ति को अपने और अपनी सतान के लिए हथिया लिया जाय। इस इरादे से एक निश्चयात्मक कदम उठाया गया। और वह कदम यह एक ऐसे रजिस्ट्रीशुदा अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर कराना, जो अपने किस्म का एक अजीब ही दस्तावेज़ था। मेरा खयाल है, उसने अपने इस कपट के बारे मे जरूर ही कानूनी सलाह ली होगी और मै सिर्फ यह कह सकता हूँ कि उसके सलाहकारो ने अपनी बुद्धिहीनता का भी एक बेजोड परिचय दिया था । इस अधिकार-पत्र के अधीन मा ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पुत्री को सौप दी थी। हिन्दू-कानून के अनुसार उसे यह अधिकार प्राप्त था। अधिकार-परिवर्त्तन का कारण देते हुए उसने स्वीकार किया कि वह विधवा हो चुकी है और उसने सयम तथा भक्ति का जीवन व्यतीत करने का सकल्प कर लिया है। इसलिए उसने यही सबसे अच्छा समझा कि उसकी पुत्री को तुरन्त ही अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त हो जाय। यहा तक तो ठीक ही हुआ। इसके बाद उस अधिकार-पत्र मे उस लडकी की बारी आई और बीस बरस की उस जवान लडकी से यह घोषणा करवाई गई कि अभी तक चूकि उसे अपने जीवन मे बहुत दु ख मिला है, उसने निश्चय कर लिया है कि वह ससारी झगडो मे न पडेगी, न जमीन-जायदाद की देखभाल के पचडे मे ही पडेगी। इसलिए कि वह अपना जीवन सादगी और सयम से बिताना चाहती है, इसलिए उसने निश्चय कर लिया है कि अपनी सारी सम्पत्ति कुटुम्ब के मान्य देवता को समर्पित कर देना ही उत्तम है। इतना सब कर चुकने के बाद उसने यह भी ऐलान किया कि उसके चाचा ने उसकी देवार्पित सम्पत्ति के व्यवस्थापक बनने की उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। इस-

लिए उसने अपने चाचा को और उसके बाद चाचा के पुत्रो को पीढी-दर-पीढी इस काम के लिए नियुक्त कर दिया है। हरेक जानता है कि इस प्रकार की व्यक्तिगत धार्मिक भेट के दुरुपयोग की बहुत अधिक सभावना बनी रहती है, और शायद ही कभी जायदाद का किराया या मुनाफा देवता की सेवा के काम मे लाया जाता हो। इस प्रकार चाचा ने सोचा कि उसने एक ही चोट मे मा और बेटी दोनो से छुटकारा पा लिया और अपने तथा अपने बेटे-पोतो के लिए जायदाद हथिया ली।

अब नाटक का नया दृश्य आरम्भ होता है। लडकी का पति इतनी कम उम्र का था कि खुद कुछ न कर सकता था; किन्तु सौभाग्य से उसका एक भाई था जो उससे अधिक अनुभवी था और जो लखनऊ के प्रातीय दफ्तर मे कर्मचारी था। जब इस भाई ने अपने शहर मे लडकी के चरित्रभ्रष्ट होने की अफवाहे सुनी तो उसे बडी हैरानी हुई। उसका खयाल था कि उसके भाई की स्त्री बहुत सच्चरित्र और सुशील लडकी है। वह विश्वास न कर सकता था कि ऐसी लडकी मा के घर मे दुश्चरित्र बन सकती है। वह इस सारे मामले को कुछ शक की निगाह से देखने लगा। उसने कार्लटन नामक एक रिटायर्ड पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से सलाह ली, जो रिटायर होने के बाद अनियमित ढग से लोगो को कानूनी सलाह दिया करता था। जहा तक मुझे खयाल है, पुलिस विभाग मे अपनी नियुक्ति से पूर्व वह स्वय एक वकील रह चुका था। उसका बेटा बैरिस्टर था और मेरा घनिष्ठ मित्र था। श्री कार्लटन ने सलाह दी कि वह मामला कचहरी का नही है, बल्कि सीधी कार्रवाई का है। अत लडके के भाई और श्री कार्लटन लखनऊ से सबसे निकट के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे और वहा से सोलह मील की दूरी पर लडकी के चाचा के गाव के लिए रवाना हुए। वे दोनो एक इक्के मे वहा पहुँचे और गोरे के आगमन ने सारे गाव मे खलबली मचा दी। इक्का चाचा के घर पहुँचा और उसमे से रिटायर्ड पुलिस सुपिरिन्टेन्डेन्ट लडके के भाई के साथ उतरे और उन्होने बडे नाटकीय ढग से लडकी के बारे मे पूछा कि वह कहा है और क्यो उसे उसके

पति के घर वालो की इच्छा के विरुद्ध रोक रखा गया है । एक साथ हलचल और गडबडी का मच जाना स्वाभाविक था । चाचा बाहर निकल कर आया और गोरे आदमी की मौजूदगी मे बहुत ही नम्र बन गया। थोडी देर बाद लडकी की मा आई और उसके हावभाव से भी बडी नम्रता झलक रही थी। कार्लटन ने इस बात पर जोर दिया कि लडकी को तुरन्त पेश किया जाय और वह लडकी भी घर के अन्दर से निकल कर बाहर कमरे मे आई । तब कार्लटन ने कहा कि वह लडकी को लेने आये हैं, उसे उसी वक्त भेजना पडेगा। मा ने बहुत विरोध किया। कहने लगी कि यह असभव है। नए कपडे और उचित रस्म अदा किये बिना कैसे मै इस तरह अपनी बेटी को भेज सकती हू । रीति के अनुसार लडकी के लिए नए कपडे और कुछ गहने नए बनवाने होगे और आज का दिन भी अशुभ है अगला शुभ दिन चार दिन बाद आयगा । इसलिए लडकी को तुरत भेजने का सवाल ही पैदा नही होता। कार्लटन ने हठ पकड ली और उसने लडकी से पूछा कि क्या वह चलने को तैयार है। लडकी ने तुरन्त उत्तर दिया कि वह तैयार है । उससे पूछा गया कि उसे किस कपडे की जरूरत है तो उसने कहा कि उसे किसी चीज की जरूरत नही, "मैं इसी साडी मे चलने के लिए तैयार हूँ, मुझे और कुछ नही चाहिए ।" जब कार्लटन ने कहा, "आओ, चलो" तो वह बडी तत्परता के साथ तुरन्त इक्के मे जा बैठी। चाचा और मा हैरान रह गए, न वे कुछ कह सके और न कुछ कर सके। इक्का चल दिया और लडकी प्रसन्न और प्रफुल्ल अपने पति के घर पहुँची।

वहा उससे विगत अठारह महीने की घटनाओ के बारे मे पूछा गया। उसने अपने पति तथा पति के परिवार की ओर से की गई अपनी उपेक्षा की बहुत शिकायत की। उन लोगो ने उसे विश्वास दिलाया कि वे उसे हमेशा चिट्ठी लिखते रहे। उसने कहा कि मुझे कभी कोई चिट्ठी नही मिली। बदचलनी की सब अफवाहे बिलकुल बेबुनियाद थी। फिर उसने उस अधिकार-पत्र के बारे मे बताया जिसपर हस्ताक्षर करने के लिए

उसे लाचार किया गया था। कानूनी सलाह ली गई और अधिकार-पत्र को रद्द करने तथा सम्पत्ति की वापसी के लिए दावा किया गया। मा का तो अब प्रश्न ही नही उठता था, क्योकि वह अपनी सम्पत्ति अपनी पुत्री को सौप चुकी थी।

मेरे खयाल मे यह एक ऐसा मामला था, जिसमे दो मत होने सभव ही न थे, लेकिन जिन्दगी बहुत कुछ सिखाती है। चाचा ने गभीरतापूर्वक कहा कि वह अधिकार-पत्र भतीजी की पूरी-पूरी मशा से लिखा गया है और वह उससे बधी हुई है। चाचा को एक ऐसा न्यायाधीश भी मिल गया, जिसने कुछ गवाहो की शहादत लेकर मुकदमा खारिज कर दिया।

इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपील की गई और मुझे लडकी की ओर से नियुक्त किया गया। आमतौर पर अदालत मे मै अपनी भावनाओ को अपने ऊपर हावी न होने देना ही सदा से उचित समझता आया हूँ, किन्तु इस मौके पर इस निर्मम दुष्टता ने मुझमे इतना क्षोभ भर दिया जिसे छिपाना मेरे लिए सभव न था, मेरा खयाल है कि यह क्षोभ बिलकुल सच्चा होने से न्यायाधीशो को भी छू गया। किसी प्रकार के लबे-चौडे विवाद का न वहा प्रश्न था और न आवश्यकता ही। मैंने मात्र सचाई बयान कर दी और फिर उस अधिकार-पत्र को पढ सुनाया। न्यायाधीश सन्न रह गए। यह सब कितना अजीब और कितना अस्वाभाविक था! पेशी थोडी देर मे ही खत्म हो गई और न्यायाधीशो ने चाचा के वकीलो को बडी लताड सुनाई। अपील मजूर की गई और न्यायाधीश के पास मामला दुबारा भेज दिया गया ताकि इस दोरान मे चाचा द्वारा प्राप्त किराये और मुनाफे की रकम निर्धारित की जा सके। इस मुकदमे ने एक न्यायाधीश, स्वर्गीय श्री लालगोपाल मुखर्जी पर इतना प्रभाव डाला कि जब मुकदमा दुबारा सामने आया और मालूम हुआ कि न्यायाधीश ने रुपये की रकम मे फिर गोलमाल किया है तो न्यायाधीश मेरी इस बात से तुरत सहमत हो गए कि यह एक ऐसा मामला था,

जिसमे मुआवजा ऐसा मिलना चाहिए जो चाचा-जैसो के लिए पाठ रहे। प्रत्येक अनुमान चाचा के विरुद्ध होना चाहिए और लडकी को ज्यादा-से-ज्यादा लाभ पहुँचाना चाहिए। इस प्रकार वह मुकदमा खत्म हुआ।

: १३ :

## मानव-जीवन दाँव पर

शासन-अधिकारियो की आचरण-सबधी शिकायतो की न्याय-विभागीय जाच के लिए सार्वजनिक माग देखकर मुझे कभी-कभी बडा अचभा होता है। लेकिन यह भी कोई कम सतोष की बात नही कि अगर ऐसी किसी जाच-कमेटी का अध्यक्ष न्याय-विभाग का उच्च-अधिकारी हो तो जनता के विश्वास मे भारी वृद्धि हो जाती है, क्योकि जाच-पडताल के लिए सार्वजनिक न्याय-विभागीय जाच की विधि ही सर्वोत्तम मानी जाती है। सारी कार्रवाही जनता के सामने होती है, सभी सबधित दल गवाहो की छानबीन और उनसे जिरह कर सकते है। इसके अलावा हर सबधित व्यक्ति को घटना-विषयक अपना बयान देने का मौका मिलता है और अगर किसी रूप मे उसका नाम उपस्थित प्रश्न मे आ जाता है, तो वह अपनी सफाई पेश कर सकता है। इसपर भी, अदालतो मे वकालत के अपने लबे अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि जाच की इस विधि का अनिवार्यत यह नतीजा नही होता कि जाच-अधिकारी ने बिल्कुल सही तथ्य को ही खोज निकाला है। फिर भी यह सच है कि इस तरह की जाच से सही परिणामो पर पहुँचने की सुविधा हो जाती है। गवाहो को देखने और सुनने के अलावा अदालत को एक और बडा भारी लाभ होता है। वह ऐसे अनुभवी वकीलो की युक्तियो को सुनती है, जो हर बयान के मजबूत और कमजोर नुक्तो को उसके सामने पेश करते है। लेकिन इन सब लाभो के बावजूद वकीलो का यह सामान्य अनुभव है कि

किसी तथ्य के मामूली से प्रश्नो तक के बारे मे न्याय-विभागीय निष्कर्ष कभी-कभी इतने भीषण रूप मे भिन्न होते है कि सामान्य आदमी के आश्चर्य की सीमा नही रहती। मान लीजिए, एक फासी के दड के खिलाफ आप दो या दो से ज्यादा जजो की बैंच के सामने अपील पर बहस करते है। सारा मामला तीन या चार गवाहो की विश्वस्तता और उस मामले की परिस्थितियो के निष्कर्षो पर ही निर्भर करता है, लेकिन हम देखते है कि अत्यधिक अनुभवी जज भी ऐसे परिणामो पर पहुँचते है, जो सर्वथा विपरीत होते है।

एक के बाद एक अदालत मे अपीलो का जो क्रम चलता है, उनमे न केवल यह कि न्याय-विषयक मतो के कारण सघर्ष उत्पन्न होता है, बल्कि कभी-कभी न्याय का खून होता है। मुझे ऐसे भीषण अनुभव भी हुए है, जिनमे आदमियो की जान के साथ जुआ खेला जाने लगा था। अगर कही एक ही जज को उन मामलो का फैसला करना होता तो निश्चित था कि वे फासी पर लटक जाते। किन्तु घटनावश मामला एक और जज के सामने चला गया, जहाँ वे फासी के तख्ते से ही नही बचे, बल्कि वे पूर्णतया रिहा भी हो गए। ऐसे दो मामलो का मै यहा उल्लेख करूँगा, जिनमे एक तो मेरी वकालत शुरू करने के दिनो मे हुआ था और उसने मेरे दिल पर इतना गहरा आघात किया था कि उसका आतक मेरे समूचे वकालत के जीवन पर छाया रहा।

१९१४ की गर्मियो के दिन थे और मै अभी इलाहाबाद हाईकोर्ट मे नया-नया ही गया था। एक दिन मैने चार्ल्स रास आल्स्टन को एक अदालत मे फौजदारी अपील करते देखा। यह अपील हाईकोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजो, श्री जस्टिस विलियम टडबाल और श्री जस्टिस मुहम्मद रफीक के सामने पेश हुई थी। आल्स्टन भारत के गण्य-मान्य वकीलो मे थे। दीवानी कानून मे तो उनका बहुत ही व्यापक ज्ञान था। फौजदारी मामलो मे भी वह अग्रणी थे और अदालत के सामने अपने मामले को आश्चर्यजनक कानूनी चतुराई के साथ पेश करते थे।

किसी मामले के महत्वपूर्ण नुक्ते को वह सहज-ज्ञान से ही पकड लेते थे और उनके बोलने तथा व्यक्त करने के ढग से उनकी वकालत का प्रभाव बहुत बढ जाता था । बोलते समय वह थोडे शब्दो का प्रयोग करते थे; लेकिन उनका बोला हुआ प्रत्येक शब्द सुचारु रूप से चुना होता था और सुनने वालो को लगातार प्रभावित करता था। जो मामला उन्होने अदालत के सामने पेश किया था, वह था तो छोटा ही, लेकिन उसके तथ्य बडे अजीब थे ।

एक गाव के बाहरी हिस्से मे एक कुआ था और एक दिन सबेरे ही सारे गाव मे यह बात फैल गई कि एक औरत अपनी चौदह बरस की लडकी के साथ कुएँ मे गिर पडी है। बहुत से लोग वहा एकत्र हो गए और उन्हे कुए से निकालने का तत्काल यत्न किया गया । किसी तरह की मदद पहुँचने से पहले ही लडकी तो मर गई थी, लेकिन मा को जीवित ही निकाल लिया गया । उसके कुए से बाहर आते ही लोगो ने उससे पूछा कि क्या हुआ था। कहा जाता है कि उसने फौरन वही, बिना किसी सकोच के कुए के किनारे पर खडे दो आदमियो की ओर इशारा किया और बोली, "इन्ही दोनो ने मुझे और मेरी लडकी को मार डालने के लिए कुएँ मे धकेल दिया था ।" समाचार पाते ही पुलिस घटनास्थल पर पहुँच गई और जाच के बाद उसने दोनो आदमियो को हत्या के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया । इस्तगासे का कहना था कि यह औरत भिखारिन थी और गाव मे अपनी लडकी के साथ बडी दयनीय दशा मे जीवन बिता रही थी। दोनो अभियुक्तो के साथ एक दिन इसका कुछ झगडा हो गया था और उसी सबेरे उसने गुस्से मे यह ऐलान किया था कि इन्होने मेरा जीना दूभर कर दिया है और वह इस गाव को छोडकर चली जायगी। इतना कहकर उसने अपने थोडे-से सामान को इकट्ठा किया और गॉव से रवाना हो गई। दोनो अभियुक्त उसका पीछा कर रहे थे । इसके बाद बताया गया कि जब वह कुए के पास से निकल रही थी तो उन्होने उसको और उसकी बेटी को मार

डालने की इच्छा से कुए मे धकेल दिया। वास्तविक घटना के बारे मे प्रत्यक्ष गवाह कोई नही था, लेकिन गॉव मे जो झगडा हुआ था, उसके एक या दो गवाह जरूर थे।

सैशन जज ने अभियुक्तो को दड देते हुए अपने फैसले मे लिखा "इस औरत को गवाही के कटहरे मे देखकर और उसकी स्पष्ट-वादिता तथा उसके सरल आचरण से मै इतना प्रभावित हुआ हू कि उसकी गवाही के हर शब्द पर मुझे यकीन था और उसकी गवाही के समर्थन के बिना भी अभियुक्तो को सजा देने के लिए तैयार था।" जब वह वस्तुत सजा सुनाने की सीमा पर पहुँचा, तो उसने अत मे लिखा कि यद्यपि मै इस औरत की गवाही पर यकीन करता हू, तथापि इस तथ्य को अपनी आखो से ओझल नही कर सकता कि इस अपराध को साबित करने वाली वह एकाकी गवाह है। इसलिए, विचार मे हत्या के अपराध के लिए मृत्यु-दड को कम करके आजीवन कारावास की सजा देना अधिक उपयुक्त जान पडता है।

आल्स्टन ने इसी सजा के खिलाफ अपील दायर की थी। उसने बहुत सक्षेप मे, किंतु बडे शक्तिशाली ढग से अपना मामला पेश किया था। उनका तर्क था कि झगडे की बात तो निश्चय ही सभव है, और यह भी हो सकता है कि जब यह औरत गुस्से मे गॉव से बाहर जा रही थी तो ये दोनो आदमी उसका पीछा कर रहे हो। लेकिन उसने सुझाव दिया था कि क्रोधी स्वभाव की औरतो का अपने आपको कुओ मे गिरा लेना भी असामान्य नही है। ऐसी दशा मे यह भी तो सभव है कि इस औरत ने क्रोध और आवेश मे अधी बनकर अपने आपको और अपनी लडकी को कुए मे गिरा लिया हो, और जब वह कुए से बाहर निकाली गई, और उसने दोनो अभियुक्तो को वहा देखा तो उन्हे देखते ही डर कर उसने इन्ही पर इल्जाम लगाना बेहतर समझा हो। लेकिन दोनो विद्वान् जजो पर इसका तनिक भी प्रभाव न पडा, बल्कि वे तो क्रोध मे उबल उठे। मैंने जजो को इतने आवेश मे कभी नही देखा था। श्री जस्टिस टडबाल

तो आपे से बाहर हो गए और ऊँचे स्वर मे बोले, "मिस्टर आल्स्टन, आपके मुवक्किल बडे निर्दयी, जगली , घृणा के पात्र है। मै आपको बतलाता हूॅ कि उनकी मशा क्या थी। वे उस औरत का पीछा नही कर रहे थे। बल्कि उसकी लडकी पर अधिकार करना चाहते थे । इसीलिए उन्होने मॉ का जीवन दूभर कर दिया था । जब उसने इकार किया तो वे जान-बूझ कर उसे ही नही, बल्कि दोनो को मार डालना चाहते थे।" और तो और, न्यायाधीश सैशन जज पर भी मृत्यु-दड न देने के लिए बिगडे । उनका खयाल था कि जज अपने कर्त्तव्य-पालन मे सतर्क नही रहा और इसके लिए वह दोषी है। जहॉ तक मुझे याद है, ये जज-महोदय प्रातीय न्याय-विभाग मे थे, और उन दिनो हाईकोर्ट के जजो का यह आम खयाल था कि भारतीय न्याय-विभाग के अफसरो को जब नौकरी के अतिम दिनो मे तरक्की देकर जिला का सैशन जज बनाया जाता है तो ये लोग मृत्यु-दड देने मे सकोच करते है। जस्टिस टडबाल के कहने का वास्तविक आशय यही था।

दोनो जजो ने बारबार यही विचार प्रकट किया कि वे इस थोडी सजा को स्थिर रखने मे सहमत नही हो सकते। ऐसे भीषण मामले मे तो मृत्यु-दड ही उचित है। इसमे सदेह नही कि वे खुद ही यह सजा दे देते; लेकिन कानून के अनुसार वे ऐसा नही कर सकते थे। किसी फौजदारी अपील मे भारतीय हाईकोर्ट को अपील खारिज करने का ही नही बल्कि सजा को बढाने तक का भी अधिकार है, लेकिन फौजदारी के कानून के अनुसार जब किसी सजा को बढाने की तजवीज की जाती है तो अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप मे सूचना देनी पडती है और ऐसी वृद्धि के लिए कारण प्रकट करने का समुचित अवसर प्रदान करना पडता है। है तो यह खेल विधि पालन ही, लेकिन इसका होना जरूरी होता है । फलत जजो ने इस आदेश के साथ आज्ञा निकाली कि अपील करने वालो के नाम नोटिस ज़ारी किया जाय और वे कारण बताये कि उन्हे मृत्यु-दड क्यों नही दिया जाना चाहिए। अभियुक्त जेल मे थे। उन्हे जेल मे नोटिस मिल

ही जाना था, और इसका दूसरा मतलब यह भी था कि यह मामला कुछ समय के लिए स्थगित हो गया।

लगभग दो सप्ताह बाद की बात है। मै एक और अदालत मे बैठा था—यह थी श्री जस्टिस चेमियर और श्री जस्टिस पिग्गट की अदालत। दोनो बडे पुराने और अनुभवी जज थे और मैने सुना कि पेशकार ने इसी अपील की पेशी की आवाज दी। फौरन ही मेरे कान खडे हो गए। सरकारी वकील श्री मैलकमसन खडे हुए और बडे सहज स्वर मे बोले

"श्रीमान्, कही कोई भूल हुई जान पडती है। ऐसा लगता है कि गलती से यह मुकदमा आपके सामने पेश हो गया है। अदालत न० २ के सामने इसपर पूरी तरह बहस हो चुकी है और अब सिर्फ दण्ड के निर्णय का प्रश्न शेष है। समय बचाने की दृष्टि से क्या श्रीमान्, यह आदेश कर सकेगे कि इस मुकदमे को उस अदालत के सामने पेश कर दिया जाय ?"

ज० चैमियर ने मि० मैलकमसन से कहा, "क्या यह तरीका नही है कि जब एक अदालत दड-वृद्धि का नोटिस जारी करती है तो आखिरी फैसले के लिए मुकदमा दूसरी अदालत मे पेश किया जाता है ?"

मैलकमसन बोले, "नही जनाब, ऐसा कोई तरीका या रीति नही है। हर रोज ऐसा होता है। वही अदालत नोटिस जारी करती है और वही अतिम निर्णय भी सुनाती है।"

चेमियर बोले, "अगर ऐसा नही है तो मै समझता हूँ कि ऐसा होना चाहिए। खैर, जो कुछ हो चुका, उसे छोडिए। अब तो मुकदमा हमारे सामने पेश हो गया है। हम ही इसे सुनेगे और इसका फैसला करेगे।"

विद्वान जजो ने अपील सुनी और गवाहियो को भी देख गए। तथ्य भी थोडे ही थे और गवाहियाँ भी बहुत थोडी थी। एक घटे के अदर-अदर उन्होने सब यह फैसला लिखाया कि अभियुक्तो के विरुद्ध हत्या का अपराध साबित नही होता और वे उन्हे रिहा करने की आज्ञा देते है।

यह सब मेरी उपस्थिति मे हुआ था और मेरे कानो ने इस फैसले

को सुना था। न्याय-सबधी इस बुद्धिमानी पर मै आश्चर्यचकित था और साथ ही मैंने दो मनुष्यो की जानो से होते खिलवाड को भी अपनी आँखो से देखा था। कई दिन तक इस फैसले का मुझपर असर रहा। इसके अलावा जब मैंने खुद भी फौजदारी का काम आरभ किया तो जिन मुकदमो मे सामान्य कैद की सजा होती थी, उनकी अपील करने मे मै सकोच करता था, क्योकि सज़ा मे बढती का सवाल मुझे सदा परेशान कर देता था। लेकिन इतने पर भी एक ऐसे ही मामले के खिलाफ मुझे अपील करनी पडी और मुझे वैसी ही यातना मे से निकलना पडा।

एक दिन शाम के वक्त एक डाक्टर मेरे दफ्तर मे आया। वह प्रातीय चिकित्सा-विभाग मे नौकर था। बडा खूबसूरत जवान था। उसने बताया कि हमारे परिवार के पास कुछ जमीन है। इन ज़मीनो के काश्त-कारो के साथ पिताजी का कुछ झगडा हो गया था और उन्होने गोली चला कर उनमे से एक को घायल कर दिया। इस अपराध मे उन्हे तीन बरस कैद की सज़ा मिली है। इतना कहकर उसने मुझसे पूछा कि क्या मै उसके पिता की अपील कर सकूगा ? जैसे ही मैंने सजा सुनी, मैंने पूछा "कोई मरा ?" उसने उत्तर दिया, "घायल आदमी मर गया।" पहला खयाल जो मुझे आया, और जिसे मैंने प्रकट भी किया, था कि इस अपील के लिए इकार कर दूगा। जिस गोली चलाने का नतीजा एक जान की क्षति हो, वह हत्या ही तो है और तीन बरस की कैद की सजा तो बहुत ज्यादा नही है। लेकिन वह बडी आशाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखता रहा और बोला कि आप कम-से-कम सैशन जज के फैसले को तो पढ ले। मैंने पढा। यह साफ था कि सैशन जज जिस नतीजे पर पहुँचे थे, उससे उन्हे साफ रिहा कर देना चाहिए था। अभियुक्त ने आत्मरक्षा के अधिकार की सफाई दी थी। कानून इस बारे में साफ कहता है कि अगर जान पर बन आये या जान का ख़तरा हो तो आप शक्ति का प्रयोग कर सकते है, लेकिन प्रयुक्त शक्ति परिस्थिति की अनिवार्य-ताओ से बढकर नही होनी चाहिए। जज इस नतीजे पर पहुँचा था कि अभियुक्त अपने ऐसे काश्तकारो मे घिर गया था, जिनके पास लाठियाँ थी

और जो उसे मार डालने की धमकियाँ दे रहे थे। ऐसी दशा मे केवल उपाय अभियुक्त अपनी बदूक के इस्तेमाल से ही अपनी रक्षा कर सकता था, क्योकि उस समय उसके हाथ मे दूसरी कोई वस्तु नही थी। लेकिन गोली दागते हुए उसने सब महत्वपूर्ण अगो की उपेक्षा की और टागो के निचले भाग को अपना निशाना बनाया। बहुत सभव था कि यह घाव जान-लेवा भी साबित न होता, बशर्तेकि घायल आदमी थानेदार के घटनास्थल पर पहुँचने और स्वय उस जगह को देख लेने तक महज मूर्खतावश पुलिस कास्टेबल के साथ अस्पताल जाने से इकार न कर देता। ऐसा होने मे १२ घटे से भी अधिक का समय लग गया और वह आदमी केवल रक्त बहते रहने के कारण ही मर गया। इस आधार पर अभियुक्त की यह सफाई कि उसने आत्म-रक्षा मे ही गोली चलाई थी, कानून की नजर मे न्याय्य थी, लेकिन सैशन जज ने यह स्वीकार करते हुए कि परिस्थिति-वश निजी रक्षा का अधिकार उत्पन्न हो गया था, अपेक्षाकृत तर्कहीनता के साथ लिखा था कि, गोली दागते हुए अभियुक्त ने उचित सावधानी नही बरती और इसलिए वह निजी रक्षा के अपने अधिकार को लाघ गया। तदनुसार वह हत्या के अपराध से कम का दोषी तो अवश्य है ही। फलस्वरूप उसे तीन वर्ष की कैद का दड दे दिया। मेरी राय मे यह फैसला टिकनेवाला नही था। मै सहमत हो गया और मैने अपील दायर कर दी।

मई १९३४ की गर्मियो की छुट्टियो से पहले यह श्री जस्टिस उमाशकर बाजपेयी के सामने पेश हुई। उधर मृतक के भाई की ओर से, वकील ने सजा बढाने की प्रार्थना करते हुए दर्खास्त दी थी। अपील के प्रारभ मे ही मैने तथ्यो को प्रकट कर दिया और माग की कि विद्वान सैशन जज को निजी जानकारी के आधार पर ही अभियुक्त को बरी कर देने का आदेश दे देना चाहिए था। मैने सारा फैसला पढा, जो बहुत लबा था। थोडे-से विवाद के बाद विद्वान जज ने मेरी माग के साथ सहमति प्रकट की और सरकारी वकील को जवाब देने के लिए कहा। सराकरी वकील ने विद्वान जज से प्रार्थना की कि वह मिसरीलाल चतुर्वेदी

को इस्तगासे का मामला पेश करने की इजाजत दे, जिन्होने सजा बढाने की दर्ख्वास्त का पूरी तरह से अध्ययन कर रखा है। इस पर श्री चतुर्वेदी ने मुकदमे पर बहस की। उन्होने बडी योग्यता और चतुराई के साथ जवाब दिया और यह कहते हुए मेरे पक्ष को एकदम पलट दिया कि सैशन जज की सारी जानकारी गलत थी। इस बात का यहा प्रश्न ही नही कि अभियुक्त को उद्धत काश्तकारो के जमघट ने घेर लिया था और उसके मारे जाने का खतरा हो गया था। वस्तुस्थिति यह है कि पोस्ट-मार्टम-जाच, घाव की दिशा तथा अन्य गवाहियो से यह स्पष्ट है कि काफी फासले पर से मृतक पर पीठ की दिशा से सभवत तब गोली चलाई गई जबकि वह अभियुक्त से दूर भागा जा रहा था। जस्टिस बाजपेयी इस तर्क से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने कागजात को गौर से देखा और साफ कहा कि मेरे खयाल मे मि० चतुर्वेदी सही कहते है।

दोपहर के भोजन का वक्त होने को था और वह मुझसे बोले, "डा० काटजू, यह तो बडा गभीर मामला है। मै समझता हूँ कि श्री चतुर्वेदी ने इसकी बिलकुल सही बात पकड ली है और ऐसा मान लेने पर आप जानते है कि जान के बदले जान का सवाल होगा। मै इस सजा को इसी तरह रहने की मजूरी नही देसकता।" मै तो सन्न रह गया मेरी आखो के सामने श्री आल्स्टन की मूर्त्ति आगई और मन-ही-मन मै इस अपील की सहमति के लिए अपने को कोसने लगा। आध-घटे के लिए अदालत उठी। अभियुक्त भी अदालत मे हाजिर था। बडा विशालकाय व्यक्ति था वह। मै उसे एक ओर ले गया और उसे बताया कि बिलकुल आशा नही दिखाई देती। इसके अलावा जहाँ तक मेरा खयाल है अगर तीन ही बरस मे छुटकारा हो जाय तो अपने को बडा भाग्यशाली समझो। मैने यह भी कहा कि जज तो सजा की बढती के लिए नोटिस जारी करने पर तुला हुआ जान पडता है, और क्या वह इसका सामना करने को तैयार होगा। अगर तुम चाहो तो मै जज को यथाशक्ति नरम करने की कोशिश करूँगा और उनसे अनुरोध करूँगा कि अपील को खारिज कर दिया जाय एव अधिक कार्रवाई भी न की

जाय, लेकिन इसमे खतरा भी हो सकता है। अभियुक्त की वह शक्ल आज भी मेरे सामने आ जाती है। वह कितना भयभीत था और कुछ रुककर वह बोला—"जो-कुछ मेरे लिए अच्छा लगे, वह आप करे। मै तीन बरस की कैद काटने को तैयार हूँ। मेरे भाग्य मे यही है।"

इसके थोडी देर बाद अदालत फिर से बैठी और श्री जस्टिस बाजपेयी मुझसे बोले—"डा० काटजू, खाने की छुट्टी के दौरान मे इस मामले पर विचार करता रहा हूँ और अब मैंने निश्चय कर लिया है कि दड-वृद्धि का नोटिस जारी होना चाहिए। इस सजा को मै इस रूप मे नही छोड सकता। यह तो बहुत ही थोडी है।" मैंने यह कहकर उन्हे भरमाने की चेष्टा की कि दो दिन तो पहले ही इस मामले ने ले लिये है और ऐसा नोटिस जारी करने मे व्यर्थ ही सार्वजनिक समय की बर्बादी होगी। अगर इस मामले को जहाँ-का-तहाँ ही रहने दिया जाय तो क्या इतने से ही न्याय की पूर्त्ति नही हो जायगी ? लेकिन जस्टिस बाजपेयी अपनी राय पर अटल थे और उन्होने अपनी आज्ञा लिखा दी। असीम काकुल की-सी मेरी दशा हो गई और लगा कि उन्होने मेरी इस निराशापूर्ण दशा को भाप लिया। वे बोले—"डा० काटजू, सामान्य ढग से यह मुकदमा छुट्टियो के दौरान मे लगभग ६ सप्ताह बाद फिरसे मेरे सामने पेश होता, लेकिन इससे आपकी छुट्टियो के दिन बर्बाद हो जायगे। इसलिए, मै अपने आदेशमे यह लिखे देता हूँ कि यह मामला उन दो जजो की बैंच के सामने पेश किया जाय, जिसका सदस्य मै नही हूँ। इससे आपकी छुट्टियो का समय बर्बाद नही होगा।"

इस कृपा के लिए मैंने उनका धन्यवाद किया। इससे पूर्व जीवन मे मुझे ऐसा भीषण अनुभव कभी नही हुआ था और मै यह मानता हूँ कि यद्यपि मै इलाहाबाद से पुरी तो चला गया तथापि दड-वृद्धि के नोटिस की याद के कारण मेरी छुट्टियो के बहुत-से दिन परेशानी मे निकले।

अगस्त मे अदालत खुलने पर जस्टिस हैरिस और जस्टिस रिछपाल सिह के सामने यह अपील पेश हुई और मेरे खिलाफ थे वही

सरकारी वकील और श्री चतुर्वेदी। उन्ही आधारो पर मैंने मामला पेश किया और तथ्यो को प्रकट करने के बाद अत मे विद्वान जजो के सामने फैसला रख दिया। जैसे ही मैंने बोलना समाप्त किया, श्री जस्टिस हैरिस बोले—"बेशक, यह सब गलत है। इसमे सजा देना ही गलत है। यह मुकदमा हमारे सामने कैसे आया ? इसमे तो केवल तीन ही बरस की सजा है। इसे तो किसी अकेले जज के सामने ही पेश होना चाहिए था।"

मैंने कुछ-कुछ चतुराई के साथ उत्तर दिया कि जस्टिस श्री बाजपेयी ने यह खयाल करके दड-वृद्धि का नोटिस जारी किया था कि अगर दोनो जज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सजा देना ठीक है तो सभव है, उन्हे यह सजा बहुत ही कम जचे। लेकिन विद्वान जज तो बहुत ही असतुष्ट थे और बोले, "यह मामला बिलकुल सीधा है। इसमे सजा देना सर्वथा गलत है।" इतना सुनते ही मै तत्काल बैठ गया। अभियुक्त को साफ बरी कर दिया गया।

१४

# मुवक्किल का भाग्य

अपनी वकालत के पिछले ४० बरसो पर जब मै निगाह डालता हूँ तो मुझे इस अनिश्चय के बारे मे बेहद आश्चर्य होता है, जो किन्ही मामलो के निर्णय के साथ सदा जुडा रहता है और जिसपर एक व्यक्ति का जीवन, स्वाधीनता या सपत्ति निर्भर होती है। इन पक्तियो को लिखते समय दर्जनो ऐसे मामले याद हो आते हैं, जिनमे अदालती निर्णय अतत एक बहुत ही क्षुद्र वातावरण द्वारा प्रभावित हो गया, जिसे वकील तक भी महत्वपूर्ण नही समझते थे। बहुधा कैदी का भाग्य और असभावित घटना ही उसे स्वाधीनता दिलाने का कारण बन जाते है। ऐसा ही एक मामला विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है, जिसमे अपील की पेशी के दौरान मे एक असाधारण और कल्पनातीत घटना-क्रम उपस्थित

हो गया। वह मामला इस प्रकार है—

इलाहाबाद नगर को बडे योजना-बद्ध तरीके से बसाया गया है। इसका क्षेत्रफल बहुत लम्बा-चौडा है और वह सिविल लाइन्स तथा छावनी-सहित अनेक भागो मे बटा हुआ है। लम्बी-चौडी और छायादार गलियो तथा सडको का सुन्दर जाल बिछा हुआ है। इलाहाबाद रेलवे स्टेशन के उत्तर की ओर निकलने पर आप सिविल लाइन्स की एक मुख्य सडक पर आ जाते है। पास ही पुलिस-चौकी है, उसके बाद गिर्जा है और मील भर के फासले पर हाईकोर्ट है और उसकी पूर्वी सीमा पर पश्चिम की दिशा मे सिविल लाइन्स का विस्तार है।

एक दिन प्रात समय सादा पोशाक मे दो सिपाही थाने के प्रवेश-द्वार पर खडे थे। उन्होने एक नौजवान को साइकल पर निकलते हुए देखा। उनमे से एक ने उसे बहुत गौर से देखा और अपने साथी से बोला—

"बाइसिकल पर जाते हुए उस आदमी को तुमने देखा ?"

"क्यो क्या बात है ?" उसने पूछा।

"वह एम० जे० है, मशहूर क्रातिकारी। वह फरार है। मुझे इसका पक्का यकीन है, और हमे उसकी बहुत जरूरत है।"

"तुम उसे कैसे जानते हो ?"

"वह यूनिवर्सिटी का छात्र है, और हम दोनो स्कूल मे साथ-साथ पढे है। मुझे इस बारे मे तनिक भी सदेह नही। यह वही है।"

इसपर इन दोनो ने, जिनके पास अपनी साइकिले थी, तुरत एम० जे० क्रातिकारी का पीछा करना शुरू कर दिया।

कुछ ही मिनटो की दौड के बाद वे हाईकोर्ट के सामने उसके समीप जा पहुँचे, जहा कहा जाता है कि एम० जे० फौरन रुक गया और अपनी साइकिल से उतर कर ऊचे स्वह मे बोला, "तुम मेरा पीछा क्यो कर रहे हो ? मुझे क्यो नही जाने देते ?" और जब उसने देखा कि वे पीछा नही छोडते तो उसने कमीज की जेब से पिस्तौल निकाली और उनमे से

एक की टाग पर गोली चलाई। वह उस समय कमीज और निकर पहने हुए था। इस प्रकार थोडे समय के लिए पीछा करने का अन्त हो गया।

अब एम० जे० अपनी साइकिल पर सवार होकर चल पडा, लेकिन वह साइकिल अच्छी नही थी। उसमे पकचर हो गया था। इसलिए उसने दौडना शुरू कर दिया। इधर खुफिया पुलिस के सिपाही ने अपने घायल साथी को किसी दूसरे के हवाले किया और वह भी उसके पीछे दौडा। इसके बाद इस सडक से उस सडक और उससे इसपर इस प्रकार काफी देर तक पीछा किया गया। तब, कहा जाता है कि एम०जे० एक सरकारी डाकबगले के अहाते मे घुस गया और डर के मारे वह एक पाखाने मे जा छिपा।

इस बीच बहुत-से लोग जमा हो गए, लेकिन पाखाने मे जाते हुए हर कोई डरता था, क्योकि एम० जे० की जेब मे पिस्तौल थी और प्रत्येक सशक था कि न जाने कब क्या कर बैठे। इसलिए पुलिस-सिपाही ने डाकबगले को घेर लेने की सोची और वही उसने किया भी। उसने पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को फोन किया कि सहायता के लिए पुलिस भेजी जाय। थोडी ही देर बाद पुलिस वहाँ पहुँच गई। इस बीच, एम० जे० पाखाने से बाहर निकला और सबकी नज़रो के सामने हाथ मे पिस्तौल लिये दौडता हुआ मैदान पार चला गया।

चौहद्दी दीवार पर से उसने पिस्तौल फैक दी और वह दीवार के दूसरी ओर फाद गया। सडक को पार करके वह एक और अहाते मे चला गया, वहा चद ही मिनटो बाद, पीछा करनेवालो ने उसे गिरफ्तार कर लिया। लेकिन कितने आश्चर्य की बात थी! गिरफ्तार किया हुआ आदमी धोती और कुर्ता पहने था। कमीज और निकर जैसे जादू के जोर से लोप हो गए थे।

एम० जे० की इस सारी दौड-धूप के विषय मे स्पष्ट प्रमाण एव स्वतत्र गवाहिया मौजूद थी। साथ के मकान मे जो प्रतिष्ठित व्यक्ति रहते थे, उन्होने सौगध खाकर कहा कि मैने एम० जे० को दीवार से

कूदते हुए अपनी आँखो से देखा था।

विशेषज्ञो नें बहुत सावधानी के साथ पिस्तौल की परीक्षा भी की और उनका मत था कि घायल सिपाही की टाग मे से जो गोली निकाली गई है, वह इसी पिस्तौल मे से छूटी थी।

अभियुक्त पर दो अपराध लगाए गए थे—हत्या करने की चेष्टा और विस्फोट-कानून के अधीन लाइसैस-रहित पिस्तौल रखना। असेसरो-सहित जज की अदालत मे यह मुकदमा पेश हुआ। अभियुक्त की ओर से बहुत ही सरल तरीके की सफाई पेश की गई थी। उसने यह स्वीकार किया था कि वह फरार है और कई महीनो से गिरफ्तारी से बच रहा है। उसने यह भी कहा कि वह लोगो की निगाह से बचा हुआ छिपा था। उसने गोली चलाने के सबध मे इन्कार किया और कहा कि इस घटना के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नही। मै धोती-कुर्ता पहने हुए सडक पर जा रहा था कि एकाएक पुलिस ने मुझे धर पकडा और यह झूठा मामला मेरे विरुद्ध खडा कर दिया। इस मामले मे मै सर्वथा अनजान हू। उसने पाखाने मे और मैदान के उस पार जाने और दीवार फादने तक से इन्कार किया। उसने कहा कि पिस्तौल से भी मेरा कोई सबध नही और न मैंने उसे फैका था।

जूरी ने विस्फोट-कानून के अधीन उसे 'निरपराध' बताया। इसका आशय यह था कि अभियुक्त के कब्ज़े मे पिस्तौल नही थी। इस निष्कर्ष के आधार पर स्वभावत यह परिणाम निकलता है कि वह खुफिया पुलिस के सिपाही पर गोली नही चला सकता था और असैसरो के रूप मे उन्होने यही कहा भी था।

सैशन जज की चाहे जो भी राय रही हो, पर वह बडी कठिनाई मे था। पिस्तौल-सबधी अपराध के बारे मे जूरी के मत को अस्वीकार करने का उसे कोई कारण नही दिखाई देता था और ऐसी अवस्था मे, एक जज के नाते वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि दूसरा अपराध भी निराधार हो जायगा। तदनुसार उसने अभियुक्त को बरी कर दिया।

इस रिहाई के विरुद्ध सरकार की ओर से हाईकोर्ट मे अपील की गई। यह अपील हत्या करने की चेष्टा के अपराध के सबध मे थी। मैं अभियुक्त की ओर से पेश हुआ था।

यह अपील दो विद्वान् जजो श्री मुल्ला और श्री यॉर्क के सामने पेश हुई। सरकारी वकील ने दो दिन तक बहस की और यह आभास हुआ कि जज निश्चित रूप से पुलिस के बयान को मंजूर कर लेगे।

जब मुझे जवाब देने के लिए कहा गया तो मैंने इस कानूनी प्रश्न पर बोलना शुरू किया कि जिस शस्त्र के रखने के अपराध मे अभियुक्त को हत्या करने की चेष्टा का दोषी ठहराया गया है, उसके अधीन वह दोषी करार नही दिया गया था और न ही उसके पास वह शस्त्र था। लेकिन मुझे लगा कि मै अपने पक्ष को मजबूती से पेश नही कर सका। जजो का यह दृष्टिकोण था कि दोनो अपराध अलग-अलग है और एक-दूसरे से स्वतत्र है। यह सभव था कि अभियुक्त दोषी न हो और इसलिए पिस्तौल रखने-सबधी अपराध मे बरी किया गया हो, किन्तु वह युक्ति प्रस्तुत अपील मे हस्तक्षेप नही कर सकती।

अपील के पक्ष मे मैंने बार-बार उन सब महत्वपूर्ण तथ्यो पर जोर दिया, जिनके बारे मे कोई व्याख्या नही दी गई थी। बाइसिकल पर चढे हुए जिस आदमी ने खुफिया पुलिस के आदमी को गोली मारी थी, उसने कमीज और निकर पहन रखी थी और जिस आदमी को गिरफ्तार किया गया था, वह धोती और कुर्ता पहने हुए था। पुलिस का इस सबध मे बहुत ही स्पष्ट प्रमाण था कि पाखाने के हर कोने की पूरी सावधानी के साथ खोज की जाने पर कमीज और निकर कही भी नही मिले। मैंने युक्ति दी कि कमीज और निकर का धोती और कुर्ते मे बदल जाना इस्तगासे के मामले को बिगाडता है। यहाँ मुझे पुन मानना होगा कि इससे भी मेरे पक्ष को कोई बल न मिला। जजो ने कहा कि प्रत्यक्ष गवाही बडी ही विश्वसनीय है। इसलिए उसपर अविश्वास नही किया जा सकता और वस्त्रो की अदला-

बदली भी किसी-न-किसी कारणवश होगी, जिसके बारे मे समुचित ध्यान नही दिया गया। उनका मत था—'सभव है, अभियुक्त ने कमीज के नीचे कुर्ता और निकर के नीचे धोती पहनी हो और कमीज और निकर को कही फेक दिया गया होगा और उनके लिए उचित खोज न की गई हो।"

बहस करने मे काफी वक्त लग गया था और मई के दिन होने के कारण गर्मी भी बडी थी। दोपहर के भोजन से पहले अचानक मैने देखा कि दोनो जज आपस मे कुछ बात कर रहे है और जस्टिस यॉर्क मुझसे बोले—"डाक्टर काटजू, रिकार्ड मे अभियुक्त की गति के विषय मे जो नक्शा पेश किया गया है, उसे मेरे सहयोगी ठीक तरह से समझ नही सके। डाकबगला पास ही तो है। हमारा मौके पर जाकर परीक्षा कर लेना अधिक लाभकारी होगा। हमारे ऐसा करने मे आपको कोई ऐतराज तो नही ?"

पारिभाषिक रूप मे इस मामले मे यह नया सबूत पेश करना था, लेकिन मेरा किसी प्रकार का ऐतराज उठाना सर्वथा खतरनाक साबित होता। इसलिए मै फौरन ही सहमत हो गया। इसी प्रकार सरकारी वकील भी सहमत था। भोजन के बाद हम सब—दोनो जज, सरकारी वकील और मै—डाकबगले के लिए रवाना हुए।

बडी भयकर लू चल रही थी। डाकबगले के पास पहुचने ही वाले थे तो हम सब मोटर से उतर पडे और हम रास्ते पर चलने लगे, जिस पर से डाकबगले के अहाते मे पाखाने तक अभियुक्त का पीछा किया गया था। हम वहाँ पहुँचे और देखा कि वह लोहे की चादरो की बनी हुई एक छोटी-सी कोठरी थी।

पाखाने से हम मैदान मे गए और उसके बाद उस दीवार से सटे भाग पर पहुचे, जहाँ से अभियुक्त के उस पार फादने की बात कही गई थी। दीवार के साथ-साथ इतनी घनी और ऊची झाडियाँ थी कि उनमे जरा भी फासला नही था और यहाँ तक कि एक चूहे के भी निकल

सकने का मार्ग नही था । शरीरिक रूप मे किसी के लिए भी इसके ऊपर से होकर जाना असम्भव था ।

जैसे ही मैंने यह देखा, मैंने खयाल किया कि अब मामले का अत हो गया है और मैंने अपने मुवक्किल के भाग्य की सराहना की। मैंने देखा कि जज भी बहुत ही गभीरतापूर्वक देख रहे है और बडे व्यग्र है। मैंने धीरे से उनमेसे एक से कहा, "जनाब, इस झाडी का मुलाहिजा फरमाइये।" वे चुप रहे, मैं भी और कुछ न बोला । सभी चुप थे। हम लोग हाईकोर्ट लौट आए और जजो ने आसन ग्रहण किया। उसके बाद उनमे से एक ने कहा, "डाक्टर काटजू, अपनी बहस जारी कीजिए।" मैंने जवाब दिया, "जनाब, मुझे और कुछ नही कहना है। मेरे मुव्वकिल का यह अहोभाग्य है कि जनाब को इस मौके की स्वय परीक्षा करने का खयाल हो आया । इस मामले की असत्यता कदापि इतनी सफाई के साथ प्रकट नही हो सकती थी।" इतना कहकर मैं बैठ गया ।

इसके बाद सरकारी वकील की बारी आई और जजो ने उससे कहा, "इन झाडियो के बारे मे आपको क्या कहना है ?" वहाँ कहने को कुछ भी नही था । निर्णय सुरक्षित रखा गया और कुछ दिनो के बाद फैसला सुनाया गया, जिसमे विद्वान जजो ने कहा कि उनके खयाल मे जहा यह मामला बहुत ही सदेहास्पद और सच भी हो सकता है वहा इस प्रमाण के आधार पर वह इतना स्पष्ट झूठ था कि कोई सजा नही दी जा सकती थी ।

## १५

# आत्मसम्मान

एक मित्र के साथ वकालत के जमाने की चर्चा करते हुए अचानक मुझे एक मुकदमे की याद हो आई, जो एक पुलिस-अधिकारी के असाधारण अवस्थाओ मे मारे जाने के विषय मे चला था। यह कहानी लगभग २५–३०

साल पहले की है और यह दुर्घटना इतनी दिलचस्प थी कि मै उसे भूल नही सका ।

उत्तर-प्रदेश मे बादा एक बहुत ही पिछडा हुआ जिला है । जलवायु और धरती की बेहद शुष्कता के कारण वहाँ के किसान बहुत मेहनती, सहनशील और मजबूत होते है । उस जिले के एक थाने मे एक बार यह रिपोर्ट की गई कि अमुक नाम के व्यक्ति ने शिकायत करनेवाले की बच्ची के सोने के झुमके और नथनी बलपूर्वक उतार कर छीन लिये है । उस थाने का दारोगा एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर आवश्यक जाच के लिए उस गाव मे गया । शिकायती से पूछ-ताछ करने तथा अन्य जाच-पडताल से उसे सदेह हुआ कि यह रिपोर्ट झूठी थी और निराधार आरोप लगा कर अभियुक्त को फासने का जाल रचा गया था । उसे यह भी सूचना मिली कि शिकायती ने वस्तुत खुद ही उन सोने के जेवरो को उतार लिया था और अपने पडोसी के यहाँ उन्हे छिपा दिया था । तदनुसार थानेदार तत्काल सबधित जाच के लिए उस पडोसी के यहाँ पहुँचा । घर का मालिक उस समय घर मे नही था । लेकिन वह रुका नही और सिपाही तथा गाव के चौकीदार के साथ घर के भीतरी आगन मे जा पहुँचा । जाडो के दिन थे । आगन मे उसने देखा कि उस आदमी की पत्नी अनाज बीन रही है, जिससे वह पूछ-ताछ करना चाहता था । ब्राह्मण जाति की इस स्त्री ने जब इन अपरिचितो को इस तरह घर मे प्रवेश करते हुए देखा तो वह बहुत ही डरी और उसने घूघट काढ लिया । इसपर थानेदार ने कडक कर उससे कहा कि वह बुदे और नथनी कहाँ है, उन्हे फौरन पेश करो । वह चुप रही और थानेदार बार-बार ऊँचे स्वर मे यही कहता रहा । आखिर उसने कहा कि उसे इस विषय मे कुछ भी पता नही । उसका आदमी गाव के कुए से पानी लेने गया है । वह आने ही वाला है और उसी से जाच-पडताल की जाय, लेकिन पता नही कैसे थानेदार इससे और शकित हो उठा और उसने सोचा कि आदमी के बजाय इस औरत से उन जेवरो को हासिल करना आसान होगा । इसलिए उसने उसे धमकाया और सभवत उसे गाली भी दी । स्वभावत इससे

बात बढ गई। वह औरत चिल्लाई और उसका देवर परमसुख, जो साथ के मकान मे रहता था, इस हो-हल्ले को सुनकर घटनास्थल पर जा पहुँचा। उसने देखा कि थानेदार डाट रहा है और हाथ मे बेत उठा कर उसकी भाभी को पीटने की धमकी दे रहा है। उसने बडी नम्रतापूर्वक शाति रखने को कहा और बोला—"दारोगा जी, आप यह क्या कर रहे है ? आप इस तरह इस औरत को क्यो बेइज्जत कर रहे है ? कृपा कर बाहर आइये कुर्सी पर बैठिये। हम सब तो आपके सेवक है। जल्दी ही मेरा भाई आ जाता है और आप उसीसे सारी जाच-पडताल करे। घर के जनानखाने मे जाकर आप उस औरत को अपमानित कर रहे है। ऐसा करना तो आपको शोभा नही देता।" इस पर वह और भी ज्यादा आपेसे बाहर हो गया। बहुत ही गुस्से मे आ जाने से उसे अपनी अधिकार-शक्ति पर हमले का खयाल हुआ। उसे लगा कि परमसुख ने हस्तक्षेप करके बडी भारी बेहूदगी की है। इसलिए उसने औरत को तो छोड दिया और परमसुख को अवज्ञा का अपराधी समझ कर डाटा। और बुरी तरह गालिया दी। बादा का देहाती इस प्रकार सहज ही गालिया सुन नही सकता था। उसने तत्काल जवाब दिया—"दारोगाजी, कृपाकर अब और गालिया न दीजिए। कृपया होश मे रहिए। यह अच्छी बात नही है कि आप गालिया देते जा रहे है। आखिर मैने किया क्या है ?" इससे दारोगाजी और भी गुस्सा हो गए और उन्होने परमसुख को पहले से भी ज्यादा गालिया दी। इसके साथ ही थानेदार ने कडक कर सिपाही को आज्ञा दी कि वह परमसुख के डडे लगावे। इस पर परमसुख ने गाव के चौकीदार के हाथ का छोटा-सा डडा छीन लिया और झपट कर दारोगाजी पर एक हाथ जमा दिया। दुर्भाग्यवश यह चोट दारोगा के सिर पर पडी और ऐसे मर्म-स्थल पर कि थानेदार गिर पडा और वही बेहोश हो गया। इसके बाद दस घटे के अदर-अदर वह मर गया।

इस भयकर घटना का समाचार आग की तरह सारे गॉव मे फैल गया।

'फौरन ही यह सूचना थाने और जिला-केन्द्र मे पहुँचाई गई, । थोडी देर मे ही छ थानेदारो ने बहुत-से सिपाहियो के साथ गाव पर हमला बोल दिया। उन्होने परमसुख और उसके भाई के घर की एक-एक वस्तु लूट ली और कई दिन तक वे उस गॉव मे पडे रहे । गॉव मे भीषण आतक छा गया । जिला-अधिकारी भी भयकर रूप मे आपे-से बाहर हो गए । बादा जिले के इतिहास में ऐसी घटना कभी नही हुई थी । एक थानेदार को पीटना और इस ढग से मार डालना बडी ही अशोभनीय था । बाकायदा मैजिस्ट्रेट ने जाच की और परमसुख को सेशन के सिपुर्द कर दिया गया। मुकदमे की पेशी पर परमसुख की ओर से निजी सफाई के अधिकार की माग पेश की गई। इस आवेदन मे कहा गया कि उसकी मशा थानेदार को मार डालने की नही थी; लेकिन आदि से अत तक थानेदार का आचरण कानून-विरुद्ध था। उसे घर मे दाखिल होने और औरत को गालिया देने का कोई अधिकार नही था और उसे परमसुख को भी पीटने की आज्ञा देने का हक नही था।

जज महोदय प्रातीय न्यायविभाग के सीनियर सदस्य थे और सैशन जज के रूप मे उन्होने सभवत पहली ही बार स्थानापन्नता का पद ग्रहण किया था । जहॉ तक मै समझता हुँ, उन्हे सफाई मे कुछ बल दिखाई दिया। फैसला सुरक्षित रखा गया। लेकिन मुझे शक है कि सरकारी वकील ने इस सबध मे जिला मैजिस्ट्रेट तथा ज्वाइट मैजिस्ट्रैट को, जो अगरेज अफसर थे, सूचना दी होगी कि सभवत यह फैसला इस्तगासे के खिलाफ जाय और अभियुक्त बरी हो जाय। ज्वाइट मैजिस्ट्रैट नौजवान था और अभी नया-ही-नया इडियन सिविल सर्विस मे भरती हुआ था। वह बडा जल्दबाज था। इस घटना से वह सतुलन खो बैठा और अभियुक्त के बरी होने की सभावना तो उसे और भी असहनीय लगी। वह सैशन जज से पहले कभी नही मिला था; किंतु इस सबध मे उसने बहुत ही असामान्य रूप मे आचरण किया। अभी फैसला सुनाया नही गया था कि एक दिन सबेरे ही वह जज के मकान पर गया। जज का अर्दली साहब को आया

देखकर बहुत हैरान हुआ और भागा-भागा सूचना देने भीतर गया। जज साहब आये और ज्वाइट मैजिस्ट्रेट ने बडी तेजी मे उनसे कहा, "मैने सुना है कि आप परमसुख को बरी कर रहे है। यह कैसे हो सकता है? दरअसल इस आदमी ने थानेदार की हत्या की है। आप उसे कैसे बरी कर सकते है? उसे सजा जरूर दी जानी चाहिए, चाहे जो भी सजा आप चाहे, दे, लेकिन बरी तो करना ही नही चाहिए।" इस तरीके से जज महोदय खुद भी बडे विचलित हुए। वह सादे मिजाज के आदमी थे और अगरेज अफसरो के इस ढग से पेश आने के आदी नही थे। लेकिन उन्होने साहस किया और कहा कि यह अदालत का मामला है और अगर इस बारे मे कुछ कहने की जरूरत हो तो उसकी विधि यह है कि सरकारी वकील अदालत मे पेश होकर अपनी बात कहे। इससे ज्वाइट मैजिस्ट्रेट और भी उत्तेजित हुआ और उसने कई अट-सट बाते की और चलता बना। जज महोदय को इस बात का श्रेय देना ही होगा कि वह, इस घटना के कारण, उनके खयाल मे जो सही था, उसे करने से बाज न आये।

आखिर एक दिन उन्होने फैसला सुना दिया और अभियुक्त को बरी कर दिया गया। लेकिन इस फैसले की उन्हे कीमत भी चुकानी पडी। सैशन जज की बजाय वह शेष नौकरी-काल मे दीवानी के ही जज रहे। कई बाद के आनेवाले उनसे आगे निकल गए, उनकी तरक्कियाँ हो गई, परतु वह उसी स्थान पर रहे और आखिरकार समय से पहले ही रिटायर हुए।

अधिकारी इस फैसले को ऐसे ही नही छोडना चाहते थे। जिला मैजिस्ट्रेट ने अपने डिवीजन के कमिश्नर को इस रिहाई के विरुद्ध अपील करने के लिए लिखा। उसने पत्र मे लिखा था (जो मैने बाद मे पढा) कि एक पुलिस-अधिकारी की हत्या मे अपराधी को इस प्रकार बरी कर देने से सारे प्रशासन का अत हो जायगा और वह अपने जिले मे शाति और शासन-व्यवस्था के लिए जिम्मेदार नही होगे। इसलिए प्रशासन-सबधी दृष्टि से ऐसे मामलो मे सजा देना अत्यावश्यक है। कमिश्नर ने जिला मैजिस्ट्रेट के पत्र का समर्थन करते हुए इस प्रस्ताव को सरकार के पास भेजा।

तदनुसार यह प्रस्ताव सरकारी वकील के पास कानूनी राय के लिए भेजा गया और उसके बाद वह न्याय-विभाग के सचिव के पास पहुचा। उन दिनो इलाहाबाद हाईकोर्ट मे सरकारी वकील एक अगरेज बैरिस्टर थे। वह फौजदारी मे बहुत अनुभवी थे। उन्होने सलाह दी कि अपील मे बहुत कामयाबी नही होगी। इसपर हाईकोर्ट में इस अपील के जाने से जनता मे भी खलबली मचेगी और मृत पुलिस-अधिकारी के आचरण पर विपरीत टिप्पणियाँ होगी। यही खयाल न्याय-विभाग के सचिव का भी था। आखिरकार यह फाइल यू० पी० के गवर्नर सर माल्कम हेली के पास गई। उन्होने अपने कानूनी सलाहकारो की राय के खिलाफ अपील करने का आदेश दिया। उन्होने टिप्पणी की कि ऐसे फैसले को मजूर करना सभव नही।

फलत सरकारी वकील ने हाईकोर्ट मे अपील दायर कर दी और हाईकोर्ट मे परमसुख की ओर से मुझे पेश किया गया। यह अपील दो अगरेज जजो की अदालत मे लगी। पेशी से एक या दो दिन पहले परमसुख मेरे यहा आया और उसने अपील के समय अदालत मे हाजिर रहने की स्वीकृति के लिए दर्ख्वास्त देने को कहा। मैंने उस आदमी को देखा, लबा-चौडा कद, चौडी छाती और पहलवान-सा दिखाई पडता था। उसे देखकर वस्तुत मुझे इस बात का आश्चर्य नही रहा कि ऐसे दैत्याकार व्यक्ति के एक ही वार से बेचारा थानेदार जिदा कैसे रह सकता था। मैंने कहा, "अगर जजो ने तुम्हारी सूरत भी देख ली तो परमात्मा ही रक्षक है। तुम्हे जरूर ही सजा हो जायगी। तुम्हे कोई भी बचा नही सकेगा। इसलिए परमात्मा के नाम पर हाईकोर्ट ही क्या, इलाहाबाद तक मे न आना, क्योकि सभव है जज लोग तुम्हे देखना चाहे और अगर तुम अदालत के अहाते या इलाहाबाद शहर मे भी हुए तो मुझे तुमको हाजिर करना पड जायगा। फिर होगा यह कि सारा मामला चौपट हो जायगा। अगर तुम इलाहाबाद मे न हुए तो देखने का प्रश्न आने पर मामला रफा-दफा भी हो सकेगा।"

जिस दिन हाईकोर्ट मे अपील पेश हुई और जब तथ्य उपस्थित किये गए तो जज सहजभाव से बोले "बहुत भयकर मामला है। एक पुलिस-

अधिकारी की भी हत्या हो !" मै यह कहे बिना नही रहूँगा कि दोनो जज बहुत शात थे और दोनो पूरी बात सुन कर ही न्याय करने के इच्छुक थे। उन्होने कहा, "डा० काटजू , उस सारे मामले को पुन हमारे सामने पेश कीजिए।" मैने तत्परतापूर्वक कहा, "अच्छा जनाब !" और इसके बाद मैने क्रमश पूर्ववर्णित सारा दृश्य उनके सामने पेश किया। अत मे मैने कहा, "जनाब, यह तो बुदेलखड है, जहाँ ऐसी उत्तेजना पाकर एक पतगा तक भी हमला कर देता है। परमसुख की तो बात ही छोडिए, वह तो फिर भी इसान था।"

जजो की समझ मे यह बात आ गई। अपील खारिज कर दी गई। इस प्रकार पुलिस-अफसर की हत्या का बदला नही लिया जा सका, लेकिन इसका बदला उस बेचारे जज से ही लिया गया।

: १६ :

# लालटेन की मौजूदगी

दोपहर बाद का समय था। कलकत्ते मे हरिसन रोड पर से निकलते हुए एक देहाती युवक रुका और एक पुलिस के सिपाही से बाते करने लगा। उसने कहा,

"वह जो आदमी सामने से आ रहा है, उसे देखते हो ?"

"हाँ", पुलिसवाले ने कहा, "कौन है वह ?"

"वह हत्यारा है, उसने एक आदमी की हत्या की है।"

"तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?"

"मेरे चाचा ने मुझे सूचना दी है। उनका ख़त इस बारे मे मेरे पास आया है।"

"कब ?"

"अभी थोडे ही दिन पहले। इसने गिरजाशकर की हत्या की है।"

सिपाही ने यह सुना और वह तनिक व्यग्र हो उठा। एकाएक

परिस्थिति को वह समझा नही । लेकिन सूचना इतनी सही थी कि उसकी उपेक्षा नही की जा सकती थी । वह कथित हत्यारे की ओर बढा जाकर उसके कधे पर हाथ रखा और तीनो लाल बाजार की पुलिस-चौकी मे जा पहुँचे । पुलिस के डिप्टी कमिश्नर को मामले की रिपोर्ट की गई । वह इस घटना को सुनकर बडा प्रभावित हुआ और उसने वह पत्र मागा । मुझे यह याद नही रहा कि वह पत्र उस समय उस युवक की जेब मे था अथवा वह उसे अपने निवासस्थान से बाद मे लाया । जो हो, वह पत्र पेश किया गया । उस पत्र मे चाचा ने अनेक घरेलू तथा सामाजिक समाचार देते हुए अत मे लिखा था कुछ दिन हुए गिरजाशकर को बाजपेयी (सदर्भ के लिए मै यह नाम लिखता हूँ) ने मार डाला है । मृतक के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उन्होने लिखा था—"जाति का एक सिह चला गया ।" इसपर डिप्टी कमिश्नर ने बाजपेयी को हवालात मे भेज दिया और जिला भजना के सुपिरिटेडेट पुलिस से तार द्वारा पूछा कि क्या उन्हे अमुक आदमी की तलाश है ? तत्काल जवाब आया, "हम उसकी तलाश मे है । उसे यहा भेज दीजिये ।" तदनुसार बाजपेयी को पुलिस की हिफाजत मे उसके घरू जिले मे भेज दिया गया ।

मुकदमे की पेशी के दौरान मे गवाहो से पता चला था कि यह हत्या पूर्वत आयोजित, निश्चित और इरादे के साथ अकेले आदमी का कार्य था । न केवल यह कि वास्तविक हत्या के प्रत्यक्ष गवाह भी मौजूद थे, प्रत्युत हत्या के मुद्दे के बारे मे सर्वथा निर्दोष गवाही भी उपस्थित की गई थी । इस सबध मे मालूम हुआ था कि वहा दो दल थे । एक दल का मुखिया मृतक गिरजाशकर था और दूसरे दल का मुखिया एक अन्य पडौसी जमीदार था, जिसका दाहिना हाथ—बाजपेयी—अभियुक्त था । दोनो दलो मे बहुत पुराना झगडा चला आ रहा था और सब जानते थे कि अभि-युक्त बाजपेयी ही इस झगडे की जड है, और वही अपने दल का सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य तथा सारी शरारत की बुनियाद है ।

गिरजाशकर की हत्या से छ मास पहले की बात है कि अभियुक्त बाजपेयी को एक दिन शाम के वक्त गाव से बाहर कुछ लोगो ने घेर लिया और आक्रमणकारियो ने उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया। उसे जो चोटे आई थी, उनसे साफ जाहिर था कि वह उसे निश्चित रूप मे मार डालना चाहते थे। किंतु वह मृत्यु से केवल इसलिए बच गया, क्योकि उन्होने समझा था कि वह मर गया है। वह बहुत ही हृष्ट-पुष्ट और असाधारण रूप मे स्वस्थ था, इसलिए मौत के मुह मे जा कर भी वह बच निकला। अस्पताल मे कई सप्ताह तक वह मृत्यु और जीवन के पालने मे झूलता रहा, लेकिन अन्तत अप्रत्याशित रूप में स्वस्थ हो ही गया।

जैसे ही उसे होश हुआ, उसकी यह धारणा बन गई कि मृतक गिरजाशकर के आदमियो ने ही उसे मार डालना चाहा था और वह उसके भाडे के आदमियो का शिकार बना है। खूखार स्वभाव का होने के कारण उसने इसका बदला लेने का दृढ निश्चय कर लिया। उसने अपने डाक्टरो, कम्पाउडरो, नर्सों और अपने मिलने वाले सभी लोगो से कहा कि जैसे भी हो, अस्पताल से छुट्टी पाकर सबसे पहले वह गिरिजाशकर को मार डालने का काम करेगा। इस बीच उसने यह सुना कि उसके मालिक ने गिरजाशकर के साथ सुलह कर ली है। इससे वह और भी आग-बबूला हो गया। बाजपेयी की धमकियो का पास-पडौस मे हर किसी को ज्ञान हो गया और गिरजाशकर को भी इसका पता लगा। उसने अपनी सुरक्षा और हिफाजत के लिए प्रबध किये। उसने दो बहुत तगडे अगरक्षक नियत किये। वे चौबीसो घटे उसके साथ रहते थे और रात के समय उसकी खाट के दोनो ओर अपने-अपने बिस्तर लगाकर सोते थे।

गिरजाशकर का घर उसके अपने ही अहाते मे था। घर के सामने ही एक बरामदा था और बरामदे मे दो द्वार थे, जो भीतर की ओर बडे कमरे मे खुलते थे। उस समय गिरजाशकर के परिवार मे एक तो वह खुद

था, एक उसका छोटा भाई था, जो बुखार मे पडा था और तीसरी उसकी माता थी। भीतर के कमरे मे उसकी माता और उसका बीमार भाई सोते थे। दोनो दरवाजो मे से एक को रात के समय थोडा-सा खुला रखा जाता था।

दोनो अगरक्षको के बयान के अनुसार हत्या की रात को आधी रात के बाद वे बुरी तरह गलगलाने की आवाज सुनकर एकाएक जाग गए। वे उठे और अभियुक्त बाजपेयी को गिरजाशकर की खाट के सिरहाने देख कर डर गए। बाजपेयी के हाथ मे कुल्हाडी या दूसरा पैना हथियार था और गिरजाशकर का सिर प्राय धड से अलग पडा हुआ था, और उस गहरे घाव मे से रक्त की धार बह रही थी। चारो ओर मृत्यु का-सा सन्नाटा था। बरामदे के उत्तरी छोर में लटकी हुई एक छोटी-सी लालटेन की फीकी-सी रोशनी उस दृश्य पर पड रही थी। यद्यपि वह अधेरी रात थी तथापि अगरक्षको ने लालटेन की रोशनी के सहारे बाजपेयी को पहचाना था। लेकिन पूर्व इसके कि वे कुछ कर सके, वह भाग गया।

उन्होने हो-हल्ला मचाया। बुढिया मा भी जाग गई थी। वह बरामदे मे आ गई और उसने बाजपेयी को भागते हुए देखा और उसे पहचान लिया। बीमार भाई एक या दो मिनट के बाद बाहर आया। उसने भी हत्यारे को भागते हुए देखा लेकिन वह उसे पहचान नही सका। पन्द्रह मिनट के अन्दर-अन्दर सारा गाव जाग गया। लोग घटनास्थल पर दौडे आए और कुछ ने कहा कि उन्होने हत्यारे को भागते हुए देखा है और उन्हे पक्का यकीन है कि वह बाजपेयी के सिवा दूसरा कोई नही था। आधे ही घटे के अन्दर-अन्दर पुलिस-थाने मे सारे मामले की रिपोर्ट दर्ज कराई गई और इस अपराध के अपराधी के रूप मे अभियुक्त का नाम लिखाया।

तत्काल ही बाजपेयी की तलाश की गई, लेकिन वह नही मिला। यह कहा गया कि उसने बडी सावधानी के साथ हत्या की योजना बनाई थी और यह अपराध करने के फौरन ही बाद वह दस मील की दूरी पर ब्राच लाइन के एक छोटे से स्टेशन पर गया और वहा से उसने कलकत्ता के

लिए गाडी पकडी ।

इस्तगासे की गवाही सभी तरह से पूर्ण थी । बहुत-सी आखोदेखी गवाहिया थी और इस मुद्दे के लिए भी बहुत मजबूत प्रमाण था । लेकिन इतने पर भी उसमे एक कमी रह गई थी और वह यह थी कि एक अनावश्यक झूठे प्रमाण के सहारे इस मामले को खडा करने की चेष्टा की गई थी । वह कमी इस असाधारण नाटकीय मामले मे बड़े ही नाटकीय ढग से प्रकाश मे आई ।

मृतक गिरजाशकर अपने जिले मे बहुत ही सम्मानित व्यक्ति था । उसकी जाति के बहुत-से व्यक्ति जिले मे प्रतिष्ठित माने जाते थे । उनमे से एक प्रमुख वकील थे, जिन्हे हम अतुलबिहारी कहेगे । वह जिला कचहरी मे वकालत करते थे । हत्या के अगले दिन शव को पोस्टमार्टम की परीक्षा के लिए जिला-केन्द्र मे लाया गया और परीक्षा के बाद उसे सबधियो के हवाले कर दिया गया । दोपहर बाद गिरजाशकर के छोटे भाई तथा अन्य रिश्तेदारो ने उसका दाह-सस्कार किया । सूर्यास्त के बाद मुर्दनी के सब लोग अतुलबिहारी के मकान पर जमा हुए ।

बहुत-से लोग वहा हाजिर थे और उनमे कुछेक छोटे वकील थे, जो अतुलबिहारी के दफ्तर मे काम करते थे । स्वभावत हर कोई उस समय हत्या के बारे मे विचार कर रहा था । बीमार भाई, जो उस समय पूर्णतया विक्षिप्त और बेहाल अवस्था मे था, अपने भाई की मृत्यु से शोकातुर आराम कुर्सी पर चित्त पडा था । "यह तो केवल दुर्भाग्य ही है", उसने कहा, "गिरजाशकर कभी न मारा जाता, अगर मूसी (दो अगरक्षको मे से एक) उस रात छुट्टी पर न गया होता । अगर मूसी मौजूद होता तो यह हत्या कभी नही हो सकती थी ।" इतने पर भी सैशन जज की अदालत मे इस मूसी ने गवाही दी थी कि वह हाजिर था और उसने वस्तुत बाजपेयी को गिरजाशकर की खाट के सिरहाने खडा हुआ अपनी आखो से देखा था ।

इसके बाद हुआ यह कि वहा उन हाजिर छोटे वकीलो मे से एक को अभि-

युक्त बाजपेयी की तरफ से खडा किया गया और जब उसने मूसी को अपनी गवाही देते हुए सुना तो उसे बीमार भाई की उस शाम को कही हुई बात का खयाल हो आया। उसने अपने बडे साथी वकीलो को इसकी सूचना दी। यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य था। मूसी से जिरह की गई और उससे कहा गया कि उस शाम को वह गिरजाशकर के घर मे हाजिर नही था और उसने कुछ भी नही देखा। लेकिन उसने इससे बिलकुल इन्कार कर दिया। बीमार भाई ने भी इस बात से इन्कार कर दिया कि उसने अतुलबिहारी के मकान पर इसके विपरीत कोई बात कही थी। इसपर वकील सफाई ने अदालत से निवेदन किया कि वह अतुलबिहारी को वास्तविक घटना की जाच के लिए बुलाए। सेशन जज ने यह निवेदन मान लिया और अतुलबिहारी को गवाही देने के लिए बुलाया गया। अतुलबिहारी बहुत प्रतिष्ठित वकील माने जाते थे और उनकी गवाही को नितात सत्य स्वीकार किया गया। उन्होने उस रात मूसी की गैरहाजिरी के बारे मे बीमार भाई ने जो कहा था, सफाई के इस बयान की पुष्टि की। लेकिन साथ ही उन्होने कहा कि इस बयान पर किसीने भी कोई ध्यान नही दिया क्योकि वह आदमी बहुत बीमार था और शोक के मारे पूर्णतया विक्षिप्त था। श्री अतुल-बिहारी ने यह भी कहा कि जितने लोग वहा जमा थे, सबको यह पक्का निश्चय था कि बाजपेयी ही वह असली आदमी है, जिसने यह अपराध किया था।

सेशन जज ने इस कथित प्रतिकूलता को बहुत महत्व नही दिया। उन्होने सबूत को पूर्णतया निर्णयात्मक खयाल किया। उन्होने दोनो अगरक्षको का विश्वास किया और यह उल्लेख करते हुए कि वह अतुलबिहारी की गवाही के प्रत्येक शब्द को स्वीकार करते है, लेकिन उनका खयाल है कि कही-न-कही कुछ भूल अवश्य हुई है। सेशन जज ने अभियुक्त को तदनुसार मृत्यु-दड दे दिया।

मुझे अभियुक्त की ओर से अपील मे पेश किया गया। हमेशा की तरह मै मिसल के अध्ययन मे जुट गया। अपने मुवक्किल को न तो तब और न कभी

बाद मे मैने देखा । उसने अपील की सुनाई के समय भी हाजिर होने की दरख्वास्त नही दी थी, इसलिए अदालत मे भी मैने उसे नही देखा था । उसकी बहन उसके मुकदमे की देखभाल कर रही थी। दूसरी ओर मृतक गिरजाशकर के परिवार और सबधी अभियुक्त बाजपेयी के दोष के विषय मे इस कारण असदिग्ध थे कि उन्होने सजा को बहाल कराने मे सरकारी वकील की सहायता के लिए भारी खर्चे से एक बहुत बडा वकील तैनात किया था ।

जितना ही अधिक मैने मुकदमे के कागजो को पढा, उतना ही अधिक मै व्यग्र हुआ। वस्तुत बहुत लम्बी-चौडी बहस की गुजाइश नही थी। केवल एक ही रास्ता नजर आता था कि वास्तविक मुद्दे के विषय मे जो सबूत पेश किये गए है, उन्हे झूठा माना जाय और उसके बाद यह सुझाव दिया जाय कि इस्तगासे का मामला वस्तुत एक मनगढन्त किस्सा है । इस बारे मे किसी को तनिक भी सदेह नही था कि अभियुक्त बाजपेयी के सिवा कोई दूसरा यह हत्या नही कर सकता था । इसलिए, यद्यपि किसी ने भी वास्तविक रूप मे हत्यारे को पहचाना नही था, तथापि हर कोई इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि हत्यारा वही था ।

इस मामले को इस दृष्टि से देखे तो स्वत ही यह निर्णय हो जाता है कि कथित प्रत्यक्षदर्शी बेमानी साबित हो जाते है। दोनो रक्षको मे से एक को हत्या से अगले दिन बीमार भाई के कथनानुसार अतुलबिहारी की गवाही के आधार पर गैर हाजिर करार दिया जा सकता है, और जहाँ तक दूसरे अगरक्षक और माता का सबध है, सारी बात रोशनी पर निर्भर करती है । यह माना गया है कि रात एकदम अधेरी थी और यह कहा गया था कि जो रोशनी थी वह लालटैन की ही थी। यह 'लालटेन', जो वहाँ पूरे समय मौजूद थी, इस्तगासे के गवाहो द्वारा अभियुक्त को पहचानने के लिए ऊँची टगी हुई जल रही थी । किसी ने भी इसकी व्यर्थता को नही भापा लोग अक्सर अधेरे मे अथवा बहुत धीमी रोशनी मे सोना पसद करते है। इस घटना मे लालटेन का आविष्कार कोई बहुत कठिन काम नही था । इस्तैगासे की कहानी की रचना को बडे योजनापूर्ण ढग से पेश किया गया

था। जिस योजना के अनुसार मूसी (अगरक्षक) को घटनास्थल पर लाया जा सकता था। उसमे लालटेन का भी खयाल किया जा सकता था। वस्तुत सारा मामला यही था।

अभियुक्त की रक्षा की केवल यही आशा थी कि इस मामले को यथासभव हल्के तौर पर पेश किया जाय और इसकी गहराई मे न पैठा जाय, क्योकि जितना ही गहराई मे आप जायगे उतना ही अभियुक्त उसकी गहराई मे डूबता जायगा।

जिस-दिन हाई-कोर्ट गर्मियो की छुट्टियो के लिए बद होनी थी ठीक उसी दिन इस मुकदमे की पेशी हुई। मैंने बहुत ही सामान्य रूप मे मामला पेश किया और सबूत के बारे मे कोई खास चर्चा नही की। मैं मूसी और लालटेन की मौजूदगी पर ही केन्द्रीभूत रहा। मैंने बहस मे कहा कि इन अवस्थाओ मे पहचानना सभव नही था और यह भी सभव नही कि हत्यारा इस ढग से वहा खडा रहे और पकडे जाने या पहचाने जाने का खतरा उठाए, जिस तरह गवाहो ने बयान दिया है।

सीनियर जज पते की बात को बहुत जल्द पकडते थे। जब कभी उनके सामने कोई नुक्ता कोरे ढग से पेश किया जाता तो वह उसे बहुत पसद करते। मुझे महसूस हुआ कि दोनो जज मेरी बात से प्रभावित हुए है। मै बैठ गया। मै समझता हूँ कि पूरे साठ मिनट भी मैंने नही लिये होगे। इसके बाद इस्तगासे के समर्थन के लिए सरकारी वकील की ओर से वह बडे वकील खडे हुए। उन्हे लगा कि जज इस मामले को एकदम हल्का-सा खयाल करके कही अभियुक्त को बरी न कर दे। उन्होने जवाब मे कहा कि मैंने इस मामले को आवश्यकता से अधिक सरल समझा है। इसकी गुरुता के लिए सारे सबूत का भली प्रकार विश्लेपण करना आवश्यक है और इसमें लगभग तीन घटे लग जायगे। यह सुनकर विद्वान जज कुछ नाराज-से दिखाई दिये और सीनियर जज ने कहा, "अगर यह बात है तो अदालत के फिर बैठने तक मुकदमा स्थगित किया जाय।" उन्होने सभवत यही खयाल किया होगा कि जिस फौजदारी मुकदमे के पक्ष-समर्थन के लिए तीन घटे

चाहिए, वह निश्चय ही भद्दा होगा ।

अदालते बद हो जाने पर मै गर्मियो की छुट्टियो मे काश्मीर चला गया और क्लर्क को आदेश कर दिया कि छुट्टियो मे मै तो पेशी पर हाजिर न हो सकूगा, इसलिए इस अपील-सबधी कागजात अभियुक्त की बहन को लौटा दे। लेकिन उसने वह कागज न लिये । वह बेहद रोई, चिल्लाई और फलत मुझे अपील के लिए काश्मीर से आना पडा। लेकिन मेरे आने की वस्तुत जरूरत भी नही थी । मुझे मालूम नही, यह कैसे और क्यो हुआ कि जब अदालत बैठी और इस्तगासे के वकील खडे हुए तो जजो मे से एक ने कहा, "ओह, यह तो वही मुकदमा है, जिसमे एक अनुपस्थित अगरक्षक और लालटेन का किस्सा था । तो कहिए, अब आप क्या कहना चाहते है । वस्तुत उसमे बहुत कहने की गुँजाइश नही है ।"

मेरे विद्वान् मित्र ने बहुत यत्नपूर्वक पक्ष-समर्थन किया । मै समझता हू कि स्वत उन्हे यह विश्वास हो गया था कि यह मामला बिलकुल सच्चा है। उन्होने सारे सबूत और गवाहो की शहादतो का विस्तार-पूर्वक उल्लेख किया, लेकिन इसका कोई लाभ न हुआ। जज अपना निर्णय कर चुके थे। उन्होने बारबार इस बात को दोहराया, "रात एकदम अधेरी थी, मूसी वहा हाजिर नही था, घटनास्थल के लिए लालटेन का आविष्कार किया गया और इसलिए किसी प्रकार की पहचान असभव थी।" इससे भी अधिक उन्होने यह खयाल किया, "सभव है, हत्यारे के पास टार्च हो और वह एक ही बार मे गला अलग करने के बाद यथाशीघ्र भाग खडा हुआ हो।" इस्तगासे के वकील की बहस के बाद फैसला तत्काल सुना दिया गया और बाजपेयी बरी हो गया।

· १७ ·

## कडुए बादाम

श्री श्रीप्रकाशजी (इन दिनो मद्रास के गवर्नर) हिन्दुस्तान भर मे प्रसिद्ध काग्रेसी है और श्री आनन्द नारायण सप्रू उत्तर प्रदेश मे इडियन

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी है। जिस समय की म यह घटना लिख रहा हूँ, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल मे बहुत बुरी तरह बीमार पडे थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे। उनकी बीमारी के विषय मे उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी बीमारी हो बहुत कम देखने मे आई है। यह एक ऐसी बीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टो और पत्रिकाओ मे केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी। उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से बचने के लिए इनजेक्शन लगवा दिये जाय। यह एक मामूली-सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई, लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई। थोडे ही दिनो मे उनका टेम्प्रेचर बहुत ही बढ गया और उसके बाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया। उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इन्जेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत ही कई महीनो के बाद शान्त हो गई।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी बहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है। उनकी जन्म-भूमि बनारस मे उन्हे सब कोई चाहते है। जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मै समझता हूँ कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई बात को टाल नही सकता।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहाबाद आये हुए थे और मेरे ही यहाँ ठहरे थे। एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैने बनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इनकार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था। मैने जवाब दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया। उन्होने कहा कि बनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे।

और सम्भव है आपके क्लर्क ने उन्हे इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो मे जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे। मैंने कहा—"ऐसे मामलो मे मै अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हू और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराए और बोले, "मै इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ और इससे भी अधिक मेरी उनमे विशेष दिलचस्पी भी है। क्या आप उनका मामला ले सकेगे?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, क्योकि मैने कहा कि अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है। मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्यवाही करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गए। जो काम उन्होने मुझे सौपा था, न तो उन्होने ही उसे महसूस किया और न तब मैंने ही। कुछ दिन बाद जब मैने कागजो को देखा तब मैंने उसकी जटिलता को समझा। यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि यह सच था तो निश्चय ही यह अत्यन्त भयानक और विद्रोहपूर्ण था। एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे से उसे जहर दिया था। इस अपराध का मुद्दा बहुत ही घृणित था अर्थात् पुत्र और उसकी सौतेली माँ के बीच अनुचित सबध। इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप मे पेश किया गया था। मृतक की ताम्बे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी। दूकान से थोडी ही दूरी पर उसका मकान था। अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए। अभियुक्त की आयु पच्चीस तीस वर्ष के बीच थी। वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था। जो हो, उसका पिता उसके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था। उसे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबध है। इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा खयाल करता था और उसने समाचार-पत्रो मे विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जो के लिए

जिम्मेदार नही होगा। जो हो, पिता-पुत्र रहते तो इकट्ठे ही थे।

पिता की दूकान के साथ एक दूसरी दूकान थी, जहाँ मिठाइया और ठडाई मिलती थी।

इस्तगासे के अनुसार, दशहरे के दिनो मे एक दिन दोपहर को यह लडका पडोसी दूकानदार के पास आया और कहा कि चलो, आज छुट्टी मनाए। किंतु इस मित्र ने उससे क्षमा चाही कि उसे बहुत काम है और उससे अकेले ही चले जाने को कहा। इसपर पुत्र ने कहा कि वह भी नही जायगा। इतना कहकर वह चला गया। आगे यह कहा गया था कि आध घटा या चालीस मिनट बाद यह पुत्र फिर वापस आया और उसके हाथो मे ठडाई के दो गिलास थे। हर कोई जानता है कि ठडाई मे थोडी भाग, चीनी और थोडा दूध और कभी-कभी थोडे से बादाम भी पडते है। उसने इन दोनो गिलासो मे से एक पहले अपने पिता को दिया। उसका ऐसा करना ठीक ही था और पिता ने भी तत्काल ही उसे पी लिया। इसके बाद वह पुत्र साथ की दूकान मे गया और उसने दूसरा गिलास अपने दूकानदार मित्र को पेश किया। यह मित्र उस समय एक ग्राहक को सौदा दे रहा था, इसलिए उसने वह गिलास ज्यो-का-त्यो रख लिया। कुछ मिनटो बाद उसने एक घूट भरा और उसे लगा कि उसमे कुछ कडवाहट है इसलिए उसने उसे थूक दिया। इसके बाद उसने फिर उसे चखा। उसे फिर वह कडुवा लगा और उसने फिर उसे थूक दिया। इस तरह करते-करते आध घटा या कुछ समय बीत गया और हर किसी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पिता बेहोश होकर गिर पडा। वहाँ बडा भारी गुलगपाडा हो गया भीड जमा हो गई। कोई डाक्टर को बुलाने दौडा। नगर के इस हिस्से मे बहुत ही चहल-पहल रहती है और भाग्य से इसी क्षण लोगो ने एक डाक्टर को इक्के मे जाते हुए देखा, जो एक रिटायर्ड सिविल सर्जन थे। डाक्टर को तत्काल घटना-स्थल पर लाया गया। उसने पिता की जाच की और उसकी खतरनाक हालत देखते हुए उसे फौरन पुलिस-थाने की राह अस्पताल पहुचाने की सलाह दी। इसके बाद डाक्टर ने दूसरे से पूछा कि उसे किसी तरह की कोई

तकलीफ तो नही है ? इसपर उसने शिकायत की कि उसे भी थोडे-थोडे चक्कर आ रहे हैं। डाक्टर उसे अपनी डिस्पेसरी मे ले गया, उसे उसने कुछ दवाई दी और उसके बाद उसके साथ थाने मे गया जहाँ उसने अपनी रपट लिखाई। इस बीच पिता को किसी अस्पताल मे भेज दिया गया था, जहाँ तीन घटे के अदर-अदर उसकी मृत्यु हो गई। शव-परीक्षा (पोस्टमार्टम) होने पर मृतक के शरीर मे से पोटाशियम साइनाइड मिला, जो बहुत ही घातक विष होता है और डाक्टरो की राय थी कि मृत्यु जहर से हुई है।

मुझे याद नही कि पडोसी को दिये गिलास मे बची ठडाई का क्या हुआ ! बहुत सभव है उसने स्वय ही उसे पी लिया हो अथवा कोई दूसरा उसे गटक गया हो। जो भी हुआ हो, इतना तो जरूर था कि उस गिलास की ठडाई की डाक्टरी जाच नही की गई थी।

पोटाशियम साइनाइड एक बडा ही घातक जहर है और उसका आम उपयोग भी नही होता। इसलिए बिना किसी पूर्व-योजना के वह ठडाई के गिलास मे पड नही सकता था और इस्तगासे की कहानी के लिए वह स्वत प्रत्यक्ष प्रमाण था। ठडाई पीने से पहले पिता की तबियत बिलकुल ठीक थी। चार या पाच घटे पहले उसने सुबह का खाना भी खाया था और कोई भी यह कह सकता था कि उसकी मृत्यु ठडाई पीने से ही हुई है।

सैशन जज की अदालत मे जो वकील अभियुक्त की ओर से पेश हुए थे, वह मेरे परिचित थे। फौजदारी मामलो मे वह बहुत अनुभवी और सिद्धहस्त थे। उन्होने इस आधार पर सफाई पेश की थी कि यह मृत्यु विशुद्ध रूप से घटनात्मक है। उस गिलास मे कोई भी हानिकारक वस्तु नही थी, स्वाद मे कडुएपन का कारण यह था कि ठडाई तैयार करने मे कडुए बादामो का उपयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्होने चिकित्सा-विषयक न्याय-शास्त्र की कई पुस्तको के आधार पर यह सुझाव उपस्थित किया था कि थोडे से ही कडुए बादामो मे पर्याप्त मात्रा मे साइनाइड आइल होता है। यह साइनाईड आइल मृतक के खाये हुए भोजन मे से मुक्त प्राकृतिक क्षारो के

साथ पेट मे मिलकर पोटाशियम साइनाइड बन गया और उसीके कारण उसकी मृत्यु हो गई। जिरह के दौरान मे यह दृष्टिकोण उस सिविल सर्जन के सामने पेश किया गया था, जिसने पोस्टमार्टम किया था। उसने कहा कि यद्यपि यह सच है कि चिकित्सा-विषयक न्यायशास्त्र की किताबो मे गत २०० साल मे इस प्रकार की घटनाओ का उल्लेख मिलता है तथापि मैंने गत २७ बरस के निजी अनुभव मे ऐसी एक भी घटना नही देखी और वह सर्वथा असभाव्य जान पडता है। सैशन जज पर इस सफाई का कोई असर न हुआ और उन्होने दूसरी गवाहियो को दृष्टि मे रखते हुए दोष की पूर्ण प्रामाणिकता का खयाल कर लिया और उस दशा मे मृत्यु ही उसका दड था।

जब मैंने अपील के कागजो का अध्ययन किया तो मुझे यह मामला बडा जटिल-सा जान पडा। इसमे बचने की केवल इतनी ही गुजायश थी कि यह अपराध अगर सच था तो इतना अस्वाभाविक और इतना भयानक था कि न्यायाधीश का मन उसे स्वीकारने मे ठिठक जाता और मानव-स्वभाव की ऐसी नीचता को स्वीकार करने मे पूर्व कोई-न-कोई वैकल्पिक हल ढूढ निकालने की भरसक कोशिश की जाती। उधर अभियुक्त के पक्ष मे भी कुछेक स्पष्ट बाते थी। घटना के समय उसका आचरण सर्वथा सामान्य ही रहा था। उसके आचरण से यह प्रकट नही हुआ कि वह दोषी था। इस बात का भी कोई कारण नही मिला कि उसने पडोसी दुकानदार को क्यो विष देना चाहा। इसके बाद की घटनाओ के फलस्वरूप वह भागा भी नही। समाचार-पत्रो मे पिता के विज्ञापन देने की बात निश्चय ही सही बात हो सकती थी अथवा यह भी सभव था कि पिता तथा पुत्र के षड्यत्र के कारण ही यह विज्ञापन दिया गया हो, ताकि पुत्र के लेनदारो को धोखा दिया जा सके और वे परिवार की सयुक्त-सपत्ति पर हाथ न डाल सके।

यह अपील हाई कोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजो के सामने पेश हुई। मैंने अभियुक्त के आचरण-सबधी तथा इस मामले के अन्य पहलुओ को जजो के समक्ष रखा, लेकिन मैंने महसूस किया कि विद्वान् जजो पर मेरी इन

युक्तियो का कोई विशेष असर नही पडा। इसके बाद, मुझे कडुए बादाम के उक्त सिद्धान्त का आश्रय लेना पडा। जब मैंने यह तर्क उपस्थित किया तो अदालती वातावरण और भी गभीर हो गया। जब मैंने चिकित्सा-सिद्धान्त की एक किताब मे से उस एक अश को पढ कर सुनाया, जिसमें कहा गया था कि कडुए बादामो द्वारा विष की अतीत मे कुछ घटनाए हुई है तो न्यायाधीशो के चेहरो पर हल्की-सी हँसी की रेखा खिच गई। एक जज ने उपहास के तौर पर मुझसे कहा, "डा० काटजू, मै समझता हूँ कि गत २०० बरसो मे जो घटनाए हुई है, उनमे आपकी बताई घटना का ११वा नबर जान पडता है।"

इसी क्षण, मै नही कह सकता, क्या हुआ, किंतु इतना अवश्य था कि मुझमे नव-स्फूर्ति का उदय हो गया। मेरा चेहरा और स्वर दोनो ही बहुत नम्र एव उदास-से पड गए, और मैंने बहुत धीमे स्वर मे कहा,- "क्या जनाब, इस किताब के दूसरे पन्ने को पलटने का कष्ट करेगे ?" उसमे लिखा हुआ था कि पागल कुत्तो के काटने से बचने के लिए लगाए जाने-वाले इजैक्शनो की कभी-कभी प्रतिक्रिया भी हो जाती है, लेकिन ऐसा बहुत ही कम अवस्थाओ मे होता है, और १०० या इससे अधिक बरसो मे इस प्रकार के इजैक्शनो से केवल ९ या १० ही ऐसी घटनाए हुई है, जिनमे इजैक्शन लगवाने वाले को लकवा मार गया था। इसके बाद कोई नाम व्यक्त किये बिना ही मैंने आगे कहा—"जनाब, इस अदालत के एक बहुत ही निकट के मित्र के विषय मे हम सब बडे चितित रहे है, और इतने पर भी इस किताब के अनुसार, वह मामला भी इस विवरण के अनुसार ग्यारहवा ही है। उस मामले का आपको और मुझे व्यक्तिगत ज्ञान है। इसलिए हमे उसके बारे में कोई खास आश्चर्य नही जान पडता। हम सब इस मामले को जानते है और यह सत्य भी है। इस पर भी जब मैंने यह कहा कि यह विशेष घटना भी ऐसी ही है कि जिसमे कडुए बादामो द्वारा विष का एक अन्य उदाहरण उपस्थित हुआ है तो जनाब को यह असभव तथा असभाव्य जान पडता है और आपके

लिए विश्वास करना कठिन जान पडता है। लेकिन अतर क्या है ? अतर केवल इतना ही है कि एक मामला तो ऐसा है, जिसे हम अपनी आँखो से देखते है, और दूसरा मामला न्याय-सबधी जाच-पडताल का है।"

मै नही कह सकता कि क्या हुआ, लेकिन इस विश्लेषण का जो इतनी करीब की घटना का था, न केवल जजो पर ही प्रत्युत अदालत मे मौजूद हर किसी पर इतना प्रभाव पडा कि सारा वातावरण ही बदल गया। दोनो जज पूर्णतया गभीर हो गए और उनके सारे सशय हवा हो गए। मैंने फौरन ही अपनी वहस समाप्त कर दी और सरकारी वकील को जवाब देने के लिए कहा गया। उसने कडुए बादामो के आधार पर हुई मृत्यु की कहानी की असभाव्यता पर ही चर्चा की। लेकिन जजो ने कहा, "मगर ऐसा हो तो सकता है। ऐसा होने की सभाव्यता को वह रद्द कैसे कर सकते है ?" इस प्रकार जल्दी ही बहस समाप्त हो गई और खुले इजलास मे फैसले की घोषणा कर दी गई और अभियुक्त को बरी कर दिया गया।

× × ×

उसी शाम की बात है। एक मित्र के यहाँ चाय-पान का आयोजन किया गया था। हम सब वहाँ फिर एकत्र हुए। कुछ ठडाई का भी प्रबध था और जब ठडाई का गिलास मुझे पेश किया गया तो मैंने उसे लेने से इकार कर दिया। इन विद्वान् जजो मे से एक ने मेरे इस इन्कार को सुन लिया। वे बोले, "डा० काटजू, मै समझता हूँ कि अब तो आप ठडाई के नाम से ही डरने लगे है। मै आपकी इस बात की तारीफ करता हूँ। अनुभव से शिक्षा ग्रहण करना इसीको कहते है।"

## : १८ :

## भाग्य-चक्र

१९४३ की बात है। काग्रेस का स्वतत्रता-सग्राम वडे जोरो पर चल रहा था। दूसरी ओर अग्रेजी सरकार को अपनी पुलिस की ताकत

पर बडा भरोसा था । इसमे शक नही कि अनेक पुलिस-अफसरो ने उन दिनो बेहद ज्यादतिया की थी। उन्ही दिनो जिला कानपुर के एक थाने का इचार्ज था, जो अपने इलाके के लोगो के साथ बहुत बुरा सलूक करता था । यह आम मशहूर था कि भ्रष्टाचार के मुद्दो से रुपया ऐठने के लिए वह जिन्हे गिरफ्तार करके हवालात मे रखता, उनको बहुत ही अपमानित करता और उनके साथ बडी निर्लज्जता-पूर्वक पेश आता था। नतीजा यह था कि सारा इलाका उसके डर के मारे कॉपता था ।

एक दिन सुबह-सुबह उसके एक गश्ती सिपाही ने उसे सूचना दी कि ६ मील के फासले पर एक गॉव मे एक जमीदार के मकान पर बहुत-से हथियार-बद आदमी जमा हो रहे है । वे लोग पडोसी-गॉव के एक जमीदार पर हमला करना चाहते है । इसका राजनैतिक आदोलन के साथ कोई सबध नही था । यह तो केवल परिवारिक मामला था। दो भाइयो मे झगडा चल रहा था और उनकी बहन का पति उनमे से एक का साथ दे रहा था । तदनुसार एक भाई अपने बहनोई की सहायता से दूसरे भाई के घर पर हमला करने की तैयारी कर रहा था ।

इसपर थानेदार ने अपने सहायक थानेदार को सिपाहियो के एक छोटे-से दल के साथ उस गाव मे भेज दिया, जहा दूसरा भाई रहता था और स्वय एक पुलिस-दल के साथ उस बहनोई जमीदार के मकान पर जा पहुँचा। इसका नाम हम उमाशकर मान लेते है। थानेदार ने देखा कि वहा बहुत-से आदमी जमा हैं और कुछ लाठिया भी जमा की हुई पडी है । इसके अलावा उमाशकर के पास बदूक का भी लाइसैस था । उसने उमाशकर को हुक्म दिया कि वह अपनी बदूक पुलिस के हवाले कर दे । उमाशकर ने बदूक सौप दी । इसके बाद उसने उमाशकर से कहा कि वह गिरफ्तार किया जाता है और उसे थाने चलना होगा । इस सारी चर्चा के समय उमाशकर के बहुत-से आदमी वहा मौजूद थे, जिनमे उसके नौकर, कारिदे और काश्तकार भी थे ।

उमाशकर ने पहले तो थाने जाने मे टालमटोल की, पर वह पीछा न छुडा सका। आखिरकार एक इक्का मगाया गया और थानेदार उमाशकर के साथ उसमे सवार हो गया। जब वह इक्के मे बैठ गया तो कहा जाता है कि उसने अपने कारिदो से सकेत मे कहा, "अब क्या देखते हो! अब कौन-सा दिन आयगा!" इस कहने का मतलब यह बतलाया गया था कि उसे पुलिस से छुडा लिया जाय और पुलिस-दल और थानेदार पर हमला किया जाय। उसकी मशा चाहे जो भी रही हो और उसके इशारे का चाहे जो भी अर्थ समझा गया हो, यह तो ठीक ही था कि पुलिस-दल पर हमला किया गया और थानेदार को पीटा गया और वह जमीन पर गिर पडा। इस मार-पीट के समय उमाशकर इक्के से उतर कर भाग गया और घटना-स्थल से सर्वथा लुप्त हो गया। उसके बाद दिन भर वह किसीको दिखाई नही दिया। ठीक उसी वक्त अचानक दूसरे गाव से दूसरा पुलिस-दल भी उसी जगह पहुच गया। सहायक थानेदार ने भीड को डराने और तितर-बितर करने के लिए रिवाल्वर से कुछ गोलिया चलाई और उसके बाद घायल थानेदार को उसने उठाया और इक्के मे बैठाकर थाने की ओर चला। अभी वे बहुत दूर नही जा पाये थे कि भीड (जिसमे उमाशकर नही था) फिर लौट आई। इस बार भीड और भी खूखार बन गई थी और उसने थानेदार को इतनी बुरी तरह पीटा कि वह वही मर गया। इसके बाद पुलिस-दल थाने पर लौट आया और इस दुर्घटना का समाचार हैडक्वार्टरो मे भेजा गया। आग की तरह यह समाचार जिले भर मे फैल गया।

उन भयानक दिनो मे एक पुलिस के आदमी की हत्या मामूली बात नही थी इसलिए तत्काल सख्ती के साथ जाच शुरू कर दी गई। उमाशकर को और बहुत-से लोगो के साथ गिरफ्तार किया गया और जाच-पडताल के बाद उमाशकर-समेत बीस आदमियो पर मुकदमा चलाया गया। उमाशकर के विरुद्ध दोषारोपण यह था कि

उसने थानेदार पर हमला करने के लिए भीड को उकसाया और इसलिए वह हत्या के प्रोत्साहन के अपराध का दोषी था। किसी ने भी यह नही कहा कि उसने किसी भी प्रकार से व्यक्तिगत तौर पर पुलिस-दल पर हमला किया या वह हथियारबद था या उसने किसी तरह के हथियार का उपयोग किया। सार-रूप मे उसके अपराध के विषय मे इतने ही शब्द कहे गए थे। कानपुर के सेशन जज ने सब अभियुक्तो को दोषी करार दिया और चार को छोड कर, जिन्हे उसने उनकी युवावस्था के कारण आजीवन कारावास का दड दिया था, उमाशकर-सहित बाकी सोलह व्यक्तियो को मृत्यु-दड दिया गया।

हाईकोर्ट मे अपील के अवसर पर उमाशकर और बाकी कई दूसरो की तरफ से मैं पेश हुआ। चीफ जज और एक दूसरे जज ने अपील सुनी और कुछेक अभियुक्तो को पर्याप्त सबूत न होने के आधार पर बरी कर दिया। बाकी जिन लोगो की सजा स्थिर रखी गई, विद्वान जजो ने उसपर टिप्पणी की कि मृतक की वस्तुत किस व्यक्ति ने हत्या की, इस सबध मे कोई प्रमाण न होने की दशा मे सभी को मृत्यु-दड देना न्यायोचित नही होगा और ऐसी अवस्था मे आजीवन कारावास का दड समुचित जान पडता है। किंतु विद्वान जज इस बारे मे सर्वथा निश्चित थे कि इस नृशस हत्या की नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी उमाशकर पर ही मुख्यत है। उसी ने लोगो को इस अपराध के लिए उकसाया। अगर वह थाने-दार के साथ चुपचाप थाने चला जाता तो कुछ भी न होता, और इस आधार पर उसके मृत्यु-दड को स्थिर रखा गया। मैंने उसकी ओर से काफी जोर के साथ सफाई पेश करते हुए कहा, "कि पहली बात तो यह है कि उकसाने-सबधी सारी कहानी ही गलत है और जो शब्द उसके द्वारा कहे हुए बताए गए है, वे उसने नही कहे थे। दूसरे यह कि अगर वे शब्द कहे भी गए थे तो महज छुडाने भर के इशारे के लिए थे और जरूरत हो तो जबरदस्ती करके भी छुडाने के लिए थे। लेकिन किसी की हत्या के लिए नही। वही एक व्यक्ति था, जिसके पास कोई हथियार नही था, जिसने पुलिस के किसी आदमी को किसी प्रकार की हानि नही पहुँचाई और जो तत्काल

भाग गया था। जो हो, मेरी सारी वकालत और सफाई बिलकुल बेकार साबित हुई। जजो ने अपना निश्चय कर लिया था। उमाशकर की पत्नी हाईकोर्ट मे अपने पति की अपील की देखभाल कर रही थी। वह कई बार मेरे पास आई थी, छोटे-छोटे बच्चे उसके साथ होते और वह बेहद परेशान और बेशुमार चिताओ की प्रतिमूर्त्ति दीखती थी। इससे पहले यह औरत अपने गॉव के घर से कभी बाहर नही आई थी और सभी पास-पडोसी उसकी इज्जत और मान करते थे। अब वह बेचारी अपरिचित जगहो और व्यक्तियो के पास अपने पति की जान बचाने के लिए मारी-मारी फिर रही थी।

× × ×

अपील खारिज होने और हाईकोर्ट द्वारा मृत्यु-दड बहाल रहने के बाद हिन्दुस्तान मे मृत्युदड प्राप्त आदमी की जान बचाने के लिए उसके परिवार तथा उसमे दिलचस्पी रखने वाले दूसरे लोग एक आखिरी बाजी लगानी शुरू करते है। अग्रेजी राज्य के जमाने मे इग्लैंड मे प्रिवी-कौसिल मे अपील करनी होती थी और इन दिनो नई दिल्ली स्थित सुप्रीम कोर्ट मे अपील की जाती है। यह बहुत ही अनिश्चित तरीका था और आज भी वैसा ही है। यह अपील अधिकार के नाते नही होती। अपील करने की इजाजत मागनी पडती है और यह स्वीकृति बहुत ही कम अवस्थाओ मे दी जाती है।

इस उपाय के अतिरिक्त एक दूसरा उपाय भी है, अर्थात्, रहम की दरख्वास्त। हर प्रान्त मे प्रान्तीय सरकार को कानून के अधीन किसी भी दड को रोकने या स्थगित करने या बदलने का निश्चित अधिकार होता था और उसके बाद इग्लैंड के ताज का प्रतिनिधि होने के नाते वाइसराय रहम की दरख्वास्त पर उस हक का प्रयोग करता था। तदनुसार रहम की दरख्वास्त देने के क्षण से ही दरख्वास्त के फैसले तक मृत्यु-दड रोक दिया जाता था। पहले यह दरख्वास्त गवर्नर के पास जाती थी। अगर वह नामजूर करता तो वाइसराय के सामने पेश की जाती। रहम की दरख्वास्त का चाहे

जो भी रूप हो, लेकिन इतना तो ज़रूर था कि इस ढग से मृत्यु-दड प्राप्त व्यक्ति को जीने के कुछ अतिरिक्त दिन मिल जाते थे ।

इस बुरे दिन को टालने की यह अक्सर निराधार आशा हर किसी को प्रिवी कौसिल मे अपील के लिए दरख्वास्त करने की भी प्रेरणा करती थी । इस मामले मे भी उमाशकर की पत्नी ने प्रिवी कौसिल मे अपील करने के विषय मे मुझसे सलाह मागी । मैंने उससे स्पष्टतया कहा कि इस मामले मे कोई गुजायश नही । लेकिन इस प्रकार की भीषण अवस्थाओ मे ऐसी सलाह पर कौन ध्यान देता है ? किसी दूसरे वकील की मार्फत उसने आवश्यक कार्यवाही की और इग्लैड मे सालिसिटरो को प्रिवी कौसिल मे अपील दायर करने का आदेश कर दिया । फलस्वरूप फासी की आज्ञा रोक दी गई ।

इसी बीच उसने उत्तरप्रदेश के गवर्नर को भी रहम की दर्ख्वास्त दे दी । इस बार भी वह मुझसे सलाह और सहायता लेने आई । उसके बोलने के लहजे और उससे भी बढ कर उसकी आँखो के भाव ने मुझे इस बात के लिए लाचार कर दिया कि मै उसके पति को फासी से बचाने के लिए, जो भी कर सकता हूँ, करूँ । उसकी उस दशा से मै बहुत ही प्रभावित हुआ और स्वतः मेरी भी यह राय थी कि यह सजा गलत है और इस पर मृत्यु-दड तो सर्वथा अन्यायपूर्ण है । इस दृष्टि से मैंने एक बहुत ही असाधारण बात की । मैंने श्री ग्राहम विवियन को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा, जो उन दिनो उत्तर प्रदेश के गवर्नर के सलाहकार थे । १९३७–३९ मे जब मै उत्तर प्रदेश मे मत्री था, तो उनके साथ मेरा परिचय हुआ था । अपने पत्र के आरभ मे ही मैंने लिखा था कि मै यह पत्र एक वकील के नाते नही, बल्कि व्यक्तिगत रूप मे लिख रहा हूँ । मृत्यु-दड प्राप्त कैदी की पत्नी और बच्चो के लिए मुझे जो सहानुभूति है, उसीकी प्रेरणावश मानवीय आधारो पर यह पत्र लिखा है । मैंने लिखा कि मेरी राय मे सजा गलत है, लेकिन सभव है कि गवर्नर महोदय केवल न्याय-विभागीय जाच पर निर्भर रहे और स्वय इस मामले की पडताल न करे, और चूकि यह सजा सर्वथा उनकी मर्जी का प्रश्न

होगा, इसलिए मेरे विचार से प्रस्तुत मृत्यु-दड पूर्णतया अन्यायपूर्ण है। इस पत्र के थोडे ही दिन बाद श्री विवियन का एक सौहार्दपूर्ण पत्र मुझे मिला। उन्होने जवाब मे लिखा था कि आपका पत्र पाने से पूर्व ही इस मामले का निपटारा हो चुका था, और साथ ही यह भी लिखा कि यदि आपका पत्र पहले भी मिल जाता तब भी उससे उनकी राय मे परिवर्तन न हो पाता, क्योकि बहुत सोच-विचार के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि यह मृत्यु-दड सर्वथा न्यायपूर्ण है और तदनुसार गवर्नर को भी उन्होने यही सलाह दीथी। फलत गवर्नर ने दरख्वास्त नामजूर कर दी। लेकिन इतने से ही मैंने अपने आगे के प्रयत्नो को रोका नही। सामान्य क्रम मे अब यह दरख्वास्त वाइसराय के पास जानी थी और इस बार मैंने अपने स्नेही मित्र श्री श्रीप्रकाश-जी (जो उन दिनो केद्रीय धारासभा के सदस्य थे और आजकल मद्रास के गवर्नर है) को पत्र लिखा। मैंने उनसे निवेदन किया कि वह इस मामले के सबध मे भारत सरकार के गृह-मत्री और कानून-मत्री से चर्चा करे और जैसे भी हो, इस जान को बचाए। लेकिन इसका भी कोई लाभ न हुआ और श्री श्रीप्रकाशजी के कथनानुसार गृह-सदस्य इस प्रश्न पर दृढ मत थे। परिणामस्वरूप वहा भी यह दरख्वास्त नामजूर हो गई। इस प्रकार जहा तक मेरा सबध था, इस मामले में मेरा काम समाप्त हो चुका था और मेरे बस का कुछ भी बाकी नही रह गया था। समय बीतते मै इस मामले को भूल ही गया। मै समझता हूँ, यह बात १९४५ के अत की है।

इसके बाद न तो उमाशकर की पत्नी ही और न कोई अन्य व्यक्ति ही इस सबध में मेरे पास आया।

इधर भारत मे राजनैतिक परिस्थिति मे बडी तीव्रता के साथ परिवर्तन होने जा रहा था। दिसबर १९४५ मे सयुक्त प्रात के गवर्नर सर मारिस हैलेट रिटायर हो गए और उनकी जगह सर फ्रैंकिस वाईल आये। आम-चुनाव हुए और १ अप्रैल १९४६ को काग्रेस-दल ने पद-ग्रहण किया और मै पुन न्याय-मत्री बना। २ अप्रैल को सबसे पहले जो फाइले मेरे सामने आई, उनमे एक फाइल थी, जिसपर 'हत्या-केस' की 'अत्यावश्यक' लाल

चिट लगी हुई थी । स्वभावत मैंने सर्वप्रथम उसे देखना शुरू किया। यह फाइल एक स्वाभाविक क्रम मे मेरे सामने पेश की गई थी । न्याय-विभाग के सचिव ने उसपर सिफारिश की थी कि चूकि कैदी की अपील को गवर्नर तथा वाइसराय ने नामजूर कर दिया है, इसलिए अब फासी देने की आज्ञा जारी कर दी जाय। यह महज एक जाब्ते की खाना-पूरी का प्रश्न था और स्वत सचिव भी इसे निपटा सकता था। लेकिन मेरे खयाल मे उसने सोचा कि मत्रि-मडल चूकि सात बरस बाद फिर पदारूढ हुआ है, इसलिए उसने इस फाइल को मेरे सामने पेश करना मुनासिब समझा। मैंने लिखित टिप्पणियो को पढा और मुझे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि यह फाइल तो मेरे पुराने मुवक्किल उमाशकर की ही थी। मेरा खयाल था कि वह तो कबका फासी चढ चुका होगा, लेकिन मालूम हुआ कि जहाँ उसकी रहम की दरख्वास्त गवर्नर और वाइसराय दोनो ने ही नामजूर कर दी थी, वहा प्रिवी कौसिल मे उसकी अपील का इस बीच फैसला नही हो पाया था और आखिरकार १८ मार्च १९४६ को वह अपील रद्द हो गई। इस अपील की अस्वीकृति की सूचना लदन के इडिया आफिस ने भारत सरकार द्वारा प्रातीय सरकार को तार द्वारा दी थी। परिणामस्वरूप इस तार की प्राप्ति पर दफ्तर के सुपरिटेडेट ने टिप्पणी लिखी थी कि फासी रोकने की आज्ञा को अब वापस लिया जाय और जेल-अधिकारियो को फासी देने का आदेश जारी किया जाय। लेकिन इस हालत मे मुझे क्या करना था ? इससे पूर्व १९३७–३९ के दो बरसो मे जब मै मत्रिमडल मे था उस समय ऐसा कोई भी मामला मेरे सामने आता, जिसमे बतौर वकील के मुझसे सलाह ली जाती तो मेरा यह तरीका था कि ऐसे कागजो को आज्ञा के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्य-मत्री के पास भेज देता था।

तदनुसार मैने फाइल पर लिख दिया कि इस मामले मे मुझसे पूर्व ही सलाह ली जा चुकी है। इसलिए मै इस सबध मे कोई राय नही देना चाहता। इस बारे मे मै सर्वथा मौन रहा। इसके अलावा मैने फाइल मे देखा कि श्री विवियँन को लिखा मेरा पत्र और उनका जवाब भी उसमे नत्थी था। इससे

मै खुद उमाशकर को फासी पर चढाने की आज्ञा नही दे सकता था, मैंने वह फाइल मुख्य-मत्री के पास भेज दी। इसके बाद इस विपय मे मैन और कोई दिलचस्पी नही ली और कार्यवश मे भूल भी गया।

बहुत दिनो बाद, बात-बात मे विभाग के सचिव ने मुझे बताया कि सरकार ने मृत्यु-दड की जगह इस आधार पर आजीवन कारावास की सजा देने का निर्णय किया है कि कैदी के सिर पर लगभग तीन वरस तक मृत्यु-दड लटकता रहा है, इसलिए उसे फासी पर चढाना अमानवीय जान पडता है।

यदि काग्रेस मत्रि-मडल चार दिन बाद पद-ग्रहण करता या फाइल मेरे सामने पेश किये बिना ही दफ्तर से फासी की आज्ञा जारी हो जाती तो वह आदमी फासी के तख्ते पर झूल जाता। लेकिन भाग्य को वह मजूर न था और परमात्मा की दया से उसकी जान बच गई।

इसके कई महीने बाद का जिक्र है। मैं उस जिले का दौरा कर रहा था। एक दिन कानपुर लौटते हुए रात के नौ बज गए। एक जगह मैंने देखा कि सडक पर लालटेनो और टार्चों के साथ बहुत-से लोग जमा है। कार रोकी गई और मैंने पूछा कि क्या बात है। उन्होने जवाब दिया कि आप चूकि जमीदार उमाशकर के गाव से निकल रहे है, इसलिए उमाशकर के परिवार की स्त्रिया आपके दर्शन करना चाहती है। मेरा दिल भर आया और मेरी आँखो मे उमाशकर की युवा पत्नी की उन दिनो की दयनीय अवस्था का चित्र आगया। मै कार से उतर पडा और एक या दो फर्लांग पैदल चलकर उमाशकर के मकान पर पहुँचा। वहाँ उसकी पत्नी ने मेरे पाव छुए। मैंने देखा कि सारा मकान एक खडहर की हालत मे है। उसने बताया कि थाने-दार की हत्या के बाद पुलिस-वालो ने इस घर को हर तरह से नष्ट कर डाला और सब-कुछ लूट लिया। मै नही जानता कि वह सच था या झूठ, पर मकान की हालत स्वत. ही बतला रही थी।

इसीको कहते है भाग्य का चक्र!

## : १६

# पहियों के निशान

फौजदारी मामलो मे अभियुक्त हवालात मे होता है, इसलिए वकील को अपने मुवक्किल से कोई खास सहायता नही मिल पाती। इसपर, अदालत मे कैदी अक्सर अपराध-स्थल से अपनी गैर-मौजूदगी का समर्थन करता है, जो या तो कोरा झूठ होता है या ऐसे सबूत के सहारे पेश किया जाता है, जो सहज ही झूठ साबित हो जाता है। इसके अलावा भारत मे अभियुक्त की सबसे पहली प्रवृत्ति यही रहती है कि वह अपराध-स्थल से, जितना सभव हो, दूर चला जाय और बाद मे यह कह सके कि वह तो वहाँ मौजूद ही नही था। एक आदमी के बारे मे यह कहा जाता है कि उसने कलकत्ते मे अमुक की हत्या की और उसका यह कहना कि वह ठीक हत्या के समय लाहौर मे था, उसके वकील के लिए बडा टेढा प्रश्न बन जाता है। उस दशा मे वकील ऐसे गुणो के आधार पर एक दूसरा मामला तैयार करने मे अपनी सहज बुद्धि और अनुभव पर ही निर्भर रह सकता है, ताकि उसका मुवक्किल अपराध से मुक्त हो जाय। दडित या अपराधी व्यक्ति से मामले की सचाई पूछना निर्दयता ही नही, बल्कि मूर्खता है। इसलिए अभियुक्त के साथ तो मै बहुत कम बात करता था। मै केवल मिसलो को पढता और अपने साथियो के साथ मामले पर विचार कर लेता। यह विचार ही वस्तुत बौद्धिक श्रम बन जाता था और इस विचार-विनिमय मे हम शरलॉक होम के सब नियमो के अनुसार अमल किया करते थे।

उदाहरण के लिए आप इस विचित्र नियम को लीजिए कि आप एक आदमी या गतिशील वस्तु का पीछा करते है और आपको शारीरिक रूप मे उस आदमी या वस्तु का उन अवस्थाओ मे उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशा मे जाना असभव जान पडता है। तो आप कितनी शका होने पर भी उसकी जाने की दिशा पश्चिम मान लेगे और आप उसी दिशा मे उस

की खोज करने लगेगे। यह नियम है तो मामूली-सा; लेकिन अक्सर इसकी उपेक्षा की जाती है। शरलॉक होम के इसी सरल से नियम के सहारे शिवमगलसिंह फासी के तख्ते से साफ बरी हो गया। अपने वकालत के जीवन मे मुझे वह मुकदमा बडे मार्के का जान पडा था। महज एक ही बात के कारण एक आदमी का मृत्यु के मुह से साफ बच जाने का मुझे कभी अनुभव नही हुआ था। मै नही जानता कि सचाई क्या थी और न शिवमगलसिह को मैंने उस एक दिन के बाद कभी देखा, जब वह इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपनी अपील मे हाजिर हुआ था। सैशन अदालत मे इस्तगासे की वह कहानी इस प्रकार पेश की गई थी :

एक किसान ने एक दिन दोपहर के समय अपने खेत मे खून के बडे-बडे धब्बे देखे। यह खेत उसके गॉव से काफी फासले पर एक नहर के किनारे के पास था। नहर के किनारे की सडक कुछ दूरी पर एक ऐसी देहाती कच्ची सडक से जा मिलती थी, जो उत्तर से दक्षिण को जाती थी। किसान खून के उन दागो को देखकर बडा परेशान हुआ। वह गॉव मे आया और उसने गॉव के चौकीदार को इसकी सूचना दी। फौरन ही चौकीदार किसान के साथ उस खेत मे गया और उसने इस बात की तसदीक कर ली। इसके बाद पुलिस-थाने मे जाकर देखी हुई घटना की रिपोर्ट दर्ज करा दी गई। इसपर थानेदार एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर गया। लगभग सूरज डूबने के समय की यह बात है। थानेदार ने बडे गौर से खेत मे इधर-उधर देखा। उसे एक स्थान पर कुछ मात्रा मे खून और देसी स्लीपरो का एक जोडा दिखाई दिया। इससे आगे उसने ऐसे निशान देखे कि किसी आदमी या वस्तु को खेत के पार खीचकर ले जाया गया है। ये निशान उसे नहर के किनारे के साथ-साथ जाने वाले उस रास्ते पर ले गए, जहॉ उसने दो पहियोके निशान देखे। इन लकीरो का उसने पीछा किया और आखिरकार वह ऊपर कही लम्बी-चौडी सडक पर पहुच गया। वहॉ रुक कर उसने

देखा कि छकडे के पहियो की लकीरे उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओ मे जा रही है। अपनी दी हुई गवाही के अनुसार पहले तो वह उत्तर दिशा की ओर गया और उसने देखा कि वे लकीरे लगभग १०० गज तक एक काफी चौडी लेकिन सख्त जमीन तक चली गई है और उसी मे उस राह का भी अत होगया। उसने सोचा कि यह तो धोखे की पगडडी है, इसलिए वापस ही लौटना बेहतर होगा। तदनुसार वह मुडा और दक्षिण दिशा मे चला। इस ओर उसे अधिक सफलता मिली, क्योकि लगभग दो फर्लांग तक बिलकुल साफ-साफ पहियो के निशान बढते गए थे और पेडो के एक बडे झुँड मे उनका अत हो गया था। जो हो, यह थी वह जगह, जहाँ बडी भयकर घटना घटी थी, क्योकि यहाँ ढेरो लहू के सूखे हुए धब्बे थे। पहियो के निशान इससे आगे नही गये थे। सारे मामले का यही अत हो गया था। साफ जाहिर था कि यहा पर किसी की हत्या की गई है। चारो ओर खेतो मे फसले उगी हुई थी, पुलिस-दल अधिक पता लगाने के लिए इधर-उधर गया। एक खेत मे एक जगह कुछ-कुछ ताजी मिट्टी भरी दिखाई दी और खुदाई करने पर उसमे से एक बडल मिला, जिसमे बहुत से वस्त्र थे और उनमे एक बहीखाता लिपटा हुआ था। थोडी-बहुत परेशानी के बाद लोगो ने उस बडल को पहचान लिया और बताया कि वह रामनारायण फेरीवाले का है। वह अपने हाथ-ठेले पर सामान लाद कर हर हफ्ते गाँव की पैठो मे जाया करता था और बहीखाते मे वह अपने ग्राहको का लेन-देन दर्ज करता था। यह खेत शिवमगलसिह का था। इस बीच अधेरा भी हो चुका था और सडक का यह दक्षिणी छोर भी यही खत्म हो जाता था। इसलिए थानेदार अपने सिपाही के साथ गाव मे आ गया और उसने जमीदार के घर मे रात बिताई। अगले दिन जो उसने किया उससे यह मामला उलझ गया। अपनी गवाही के अनुसार, जिसे जज ने स्वीकार किया था, उसकी गति-विधि सर्वथा स्वाभाविक-सी रही और अपनी जाच-पडताल के बारे मे उसने किसी प्रकार की दिल-

चस्पी नही प्रकट की । उसने शिवमगलसिह को बुलवाया, पर वह गाव मे हाजिर नही था । थानेदार ने गाव वालो के साथ सरसरी ढग से इस मामले पर विचार किया। लेकिन जब वह घटनास्थल पर जाने लगा तो गाव वालो ने उसे थोडा रुकने को कहा । उन्होने बताया कि शिवमगलसिह आ गया है और इस बारे मे कुछ बता सकता है । थोडी देर बाद वे शिवमगलसिह को थानेदार के सामने ले आये और शिव-मगलसिह ने सब-कुछ साफ-साफ बतला दिया। उसने यह कबूल किया कि उसने रामनारायण की हत्या की और उसके वस्त्रो को अपने खेत मे दबा दिया और रामनारायण के शव को अढाई मील दूर एक जगल के कुए मे फैंक दिया। उसने उस कुए का पता बताया और थानेदार ग्रामीणो के दल के साथ उस कुए पर गया, लेकिन शिवमगल-सिह इस दल मे नही था । थानेदार ने बताया कि उसके साथ केवल एक ही सिपाही था और उसका खयाल था कि शिवमगलसिह को कुए तक ले जाने मे खतरा हो सकता है । सभव है, वह भाग जाय । इस-लिए थानेदार उसे जमीदार के मकान मे ताला लगा कर बद कर गया और सिपाही को उसकी चौकसी पर तैनात कर गया। कुए मे उतर कर रामनारायण का शव बाहर निकाला गया। इसके बाद थानेदार ओर सारा दल गाव मे लौट आया और शिवमगलसिह मे अधिक जाच की गई। उसने छकडे का भी पता बनाया। छकडे का ढाचा और पहिए अलग-अलग थे । ढाचा तो उसके घर ही के पास था और पहिए एक खेत मे अरहर की फसल और घास के ढेर के नीचे पडे थे । थानेदार के इस बयान का उन कई ग्रामवासियो ने समर्थन किया था, जो शिवमगल-सिह के प्रति किसी तरह का द्वेषभाव नही रखते थे । इन ग्रामवासियो ने शिवमगलसिह के अपराध कबूलने का समर्थन किया था। उनके कहने के अनुसार थानेदार के पास लाने से पहले शिवमंगलसिह ने लोगो के सामने भी अपराध कबूला था । लेकिन इस अपराध का आखो-देखा कोई गवाह न था । सारा मामला शिवमगलसिंह की कबूली और उसकी सूचनानुसार शव

और छकडे की प्राप्ति पर ही निर्भर था। यदि यह सबूत विश्वस्त था—और जज इसे शब्दश मान लेता है—तो इस मामले का यही अत हो जाता है और शिवमगलसिह को फासी होगी ही। तदनुसार उसे फासी की सजा हुई और उसने हाईकोर्ट मे अपील कर दी।

जब मैंने गवाहियो को पढा तो उनमे कही गुजाइश नही थी। सभी गवाह भले आदमी नजर आते थे और शिवमगलसिह को फासी के तख्ते पर झुलाने मे भी उनका कोई मकसद नजर नही आता था। लेकिन भारत मे मौखिक साक्षी को महत्व देने मे यही एक निर्णयात्मक अश नही होता। एक आदमी भारत की कानूनी अदालतो मे झूठी गवाही क्यो देता है, इसका कारण या उद्देश्य जान लेना भी कभी-कभी बडा कठिन हो जाता है। बहुधा इसमे थाने या थानेदार के पक्ष को ही समर्थन देने की इच्छा निहित होती है। कई बार मुझे ऐसा मौका पडा है, जब किसी जज ने मुझे विपरीत स्थिति मे डाल दिया और मैंने इस सवाल का जवाब देने से इन्कार कर दिया कि क्यो अमुक गवाह झूठ बोलता है। मेरा कहना था कि इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए सभव नही है।

इस खास मुकदमे मे गवाहो के विरुद्ध कुछ भी नही कहा जा सकता था, लेकिन एक बात से तो मुझे भारी आश्चर्य हुआ कि इन्स्पेक्टर जब कुए मे से शव को निकालने गया था तो वह शिवमगलसिह को साथ नही ले गया था। जब कभी पुलिस अभियुक्त की सूचना पर किसी चीज को बरामद करने जाती है तो वस्तु के बरामद होने के समय अभियुक्त को अवश्य हाजिर किया जाता ह और अमल मे वही व्यक्ति घटनास्थल से वस्तु बरामद करने की विधि बतलाने वाला होता है। शिवमगलसिंह को इसलिए नही ले जाया गया था, क्योकि उसका पुलिस की हिरासत से भाग जाने का डर था। यह कहानी मुझे मन-गढत लगी। क्या यह नही समझा जा सकता कि कुए मे से शव की प्राप्ति किसी और ही कारण हुई थी? लेकिन यदि शिवमगलसिह ने पुलिम को न बताया होता तो पुलिस उसके बा

मे जान भी कैसे सकती थी ? यह एक विचारणीय प्रश्न था, क्योकि वह कुआ आने-जाने की राह से बिलकुल हट कर और बडी दूरी पर एक जगल मे था और कोई भी जाच करनेवाला अफसर किसी निश्चित सूचना या किसी उचित कारण के बिना उसमे खोज करने की सोच भी नही सकता था। यहा मुझे एक खास दस्तावेज मिला, जो मुझे बहुत ही महत्वपूर्ण और सारे भेद को स्पष्ट करने वाला दिखाई दिया। लेकिन मातहत अदालत ने उसपर तनिक भी ध्यान नही दिया था। वह था घटनास्थल का नक्शा, जो थानेदार ने अपनी खोज के दौरान मे गवाही के साथ पेश किया था। इस घटनास्थल के नक्शे मे जिन बातो का मै उल्लेख कर चुका हू, वह सब स्पष्टतया दिखाई गई थी। लेकिन उत्तर दिशा मे यह नक्शा एक कहानी को प्रकट करता था। पहिये के निशान उत्तर दिशा मे थोडी दूर तक साफ-साफ दिखाए गये थे और उसके बाद ५०-७५ गज का एक सूखा और कठोर भूमि का हिस्सा आता था, जिसपर कोई निशान नही थे। उसके बाद नरम भूमि आ जाती थी और निशान फिर शुरू हो जाते थे, जो बहुत दूर तक गए थे। तब एकाएक दाई ओर को घूम गए थे। ये निशान सीधे कुए तक पहुचते थे। मेरे ख्याल मे यह नक्शा बहुत ही महत्वपूर्ण था और तत्काल ही मुझे लगा कि शिवमगलसिह का कथन थानेदार को कुए तक नही ले गया था, पहिये के निशानो का ही यह खेल है, और यह निशान ही असली सूचना देने वाले हैं। पुलिस ने अपनी चातुरी से बेचारे शिवमगल-सिह पर इस बरामद होने के तथ्य को लाद दिया है। मैंने मन-ही-मन अनुमान लगाया कि अगर शरलॉक होम को इस खोज का काम सौपा जाता तो वह क्या करता। निश्चय ही वह, जबकि गध तेज थी, शिकारी कुत्ते की तरह उसका पीछा करता। वह थानेदार की तरह गाव मे ही सबेरे का सारा वक्त न गँवाता, बल्कि अन्धेरे ही उठकर घटनास्थल की ओर चल देता। यदि आवश्यक होता तो वह दक्षिणी छोर को भी फिर से देख जाता और यदि उसे जँचता कि वह नितान्त

अन्तिम छोर है तो वह अपने आपसे कहता, "छकडे हवा मे गायब नही हो जाते। यदि यह छकडा दक्षिण की ओर नही गया और चूंकि पूर्व और पश्चिम का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता तो वह निश्चय ही उत्तार को गया होगा, अत मुझे फिर से उत्तर की ओर चलना चाहिए।" इसलिए वह फिर से उत्तर दिशा की ओर जाता और सख्त जमीन के टुकडे को देखने के बाद वह और आगे बढता। उसके बाद फिर से उसे पहियो के निशान मिल जाते, जो उसे सीधे कुए पर ले जाते। फिर मैंने मन-ही-मन सोचा कि मुझे इससे क्या मतलब है कि थानेदार शरलॉक होम-जैसा चतुर था या नही ? थानेदार की मौजूदा गवाही का एकमात्र आशय शिवमगलसिह को फसाना था। उसे शव मिल गया था और उसके बाद उसने खयाल किया कि वस्त्रो का बडल चू कि शिवमगल के खेत मे दबा हुआ पाया गया, इसलिए वही असली अपराधी होगा और उसी को इस अपराध मे फासा जा सकता है। इस प्रकार, जहा तक शिवमगलसिह के जीवन का सबन्ध था, वह मृत देह इस मामले मे बडा ही ज्वलत प्रमाण था। इस दृष्टि से विचार करने से यह बहुत ही सहज-सा जान पडा और मैंने अदालत मे इस ढग से उसे पेश क·ने का निश्चय किया।

वह पेशी मुझे कभी नही भूलेगी। मुकदमा इलाहाबाद हाईकोर्ट के दो प्रमुख न्यायाधीशो सर जेम्स आलसप् और श्री गगानाथ के सामने पेश हुआ था। जैसे ही मै अदालत के कमरे मे दाखिल हुआ, मैंने देखा कि शिवमगल ड्योढी मे से झाक रहा है। पीला-जर्द उसका चेहरा था। उसने मुझे नमस्कार किया। मैंने नमस्कार का जवाब दिया, लेकिन उसके साथ कोई बात नही की। बात करने से कोई फायदा भी नही था। लगभग साढे दस बजे मुकदमे की सुनाई शुरू हुई। मैंने सक्षेप मे मुकद्दमे के तथ्यो को पेश किया। अपने तर्क को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मैंने मचृ पर जाने की स्वीकृति ली। मच पर जाकर मैंने विद्वान जजो के सामने घटनास्थल का नक्शा पेश किया, जिसका आश्चर्यजनक नतीजा

हुआ। मैंने चालीस मिनट से भी कम समय लिया होगा, लेकिन मेरी बात विद्वान जजो को जच गई। सरकारी वकील मिस्टर मोहम्मद इस्माइल थे। फौरन ही सर जेम्स आलसप् ने उनसे कहा, "कहिए, आपको क्या कहना है? मै समझता हू कि तथ्य वही है जो डा० काटजू ने उपस्थित किया है।" मिस्टर इस्माइल ने शिवमगल की अपने साथी ग्रामीणो से कबूलने-सम्बन्धी मौखिक गवाही का उल्लेख किया, लेकिन सर जेम्स पर इसका कोई असर न हुआ। उन्होने कहा कि कथित जबानी कबूलने के आधार पर सजा को स्थिर रखना मुमकिन नही। छकडे के निशान ही इस मामले के असली निर्णायक है। घटे भर के अन्दर-अन्दर उन्होने अपना फैसला लिख दिया।

इसी बीच मुझे दूसरी अदालत मे पैश होने का बुलावा आ गया और जैसे ही मै अदालत के कमरे से बाहर निकल रहा था, शिवमगल ने मुझे देखा। उसने खयाल किया कि मै उसके मुकद्दमे को बीच ही मे छोडे जा रहा हू, इसलिए मैंने उससे बस इतना ही कहा, "तुम छूट गए।" उसे अपने कानो पर जैसे विश्वास नही हुआ और विस्फारित आंखो एव कपित स्वर मे उसने चिल्लाना शुरू किया, "हम छूट गए। हम छूट गए।"

: २० :

## जवाहरलाल नेहरू : वकील के रूप में

पडित जवाहरलाल के इलाहाबाद हाईकोर्ट मे वकील के रूप मे कार्य करने के बारे मे अक्सर लोग मुझसे पूछा करते है। १९१२ मे इगलैंड मे उन्होने वकालत पास की थी और उसी साल स्वदेश आकर इलाहाबाद-बार मे शामिल हुए। उनके पिता पडित मोतीलाल नेहरू उन दिनो चोटी के वकील थे और उत्तरप्रदेश भर मे उनका नाम था।

कानपुर की अदालतो मे छः बरस तक काम करने के बाद मे इलाहा-

बाद आ गया और १९१४ मे इलाहाबाद हाईकोर्ट बार का सदस्य बन गया। जवाहरलाल, जैसा कि उन्होने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है, १९१६ मे श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा चलाए होम-रूल आन्दोलन की ओर आकर्षित हो गए। वह तन-मन से इस आन्दोलन में काम करने लगे। यह १९१७ की बात है। उसके बाद पजाब के मार्शल लॉ और उसके बाद की घटनाएँ जवाहरलाल को अदालतो के रग-मच से दूर ले गईं। इस प्रकार जवाहरलाल के अदालती जीवन की अवधि चद वर्ष ही रही। वह और मै एक-दूसरे को भली प्रकार जानते थे, लेकिन बहुत घनिष्ठता नही थी। हम हाईकोर्ट मे मिला करते थे, परन्तु सामाजिक सबध बहुत थोडा था। उन दिनो मै ऐसा कर भी नही सकता था। १९१९ के बाद जब जवाहरलाल गाधीजी के प्रभाव मे आए और उन्होने तन-मन से अपने आपको काग्रेस-आन्दोलन मे झोक दिया, तभी से वह जनता मे मिलने लगे और तभी से मेरे सबध भी उनके साथ घनिष्ठ हो गए, अन्यथा वह और मै ऐसी दुनियाओ मे रहते थे, जो एक-दूसरे से बहुत दूर थी।

लोगो को इस बात का शक है कि जवाहरलाल अपने पिता के समान ही अदालती काम मे सफल होते या नही। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है और इसके विषय मे केवल कल्पना ही की जा सकती है। अदालती सफलता का भेद वस्तुत कई सदियो से एक रहस्य ही है। जवाहरलाल ने वकालत-जीवन को पडित मोतीलाल नेहरू के पुत्र के तौर पर शुरू किया था, जिससे उनको भारी लाभ था। सामाजिक रूप मे सभी जज उन्हे जानते थे और उनका व्यावसायिक रूप में उत्तरप्रदेश के प्रमुख परिवारो, जमीदारो और उद्योगपतियो के साथ भी सामाजिक सबध हुआ होगा, जो कानूनी पेशे की खुराक है। मुझे भली प्रकार याद है कि एक वर्ष से भी अधिक काल तक उन्होने मशहूर लाखना-केस मे पडित मोतीलाल नेहरू के जूनियर वकील के तौर पर बडी कडी मेहनत की थी। यह मुकदमा कई बरसो तक चलता रहा था और आखिरी दौरान मे मै भी पडित मोतीलालजी के यहाँ जूनियर के तौर पर काम करता रहा था। अपनी वकालत के थोडे से काल

मे मेरा और उनका बहुत कम ही वास्ता पडा, लेकिन दो मुकदमे मुझे याद है, जिनमे वह और मै साथ-साथ पेश हुए थे।

पडित मोतीलालजी ने कानपुर मे १८८० के आस-पास वकालत शुरू की थी और कानपुरवासी आजीवन उनका मान करते रहे। वे उन्हे प्रेम करते थे और उन्हे अपना आत्मीय समझते थे। उनके युवाकाल के वहाँ कई मित्र थे, जिनके साथ श्री मोतीलालजी का घनिष्ठ सबध था। उनमे एक बाबू वशीधर थे, जो कानपुर मे स्नेहवश बसीबाबू के नाम से मशहूर थे। इलाहाबाद के नेहरू-परिवार और कानपुर जिला अदालत के प्रमुख नेता पडित पृथ्वीनाथ के साथ उनकी गहरी घनिष्ठता थी। मै समझता हूँ कि बसीबाबू ने जवाहरलाल को बचपन मे जरूर खिलाया होगा और १९०८ मे जब मैने कानपुर मे अपना जीवन आरभ किया था और बसीबाबू को मालूम हुआ कि मै पडित पृथ्वीनाथ का जूनियर हूँ तो तत्काल उन्होने मुझे अपने आश्रय मे ले लिया। बसीबाबू के जीवन की अनेक दिशाएँ थी। वह जमीदार थे, एक तरह से साहूकार थे और सबके मित्र थे। उनकी बिरादरी का एक नौजवान था, जिसने बैंक मे नौकरी करनी चाही थी। उससे अच्छे आचरण के प्रमाण के लिए कहा गया। वह बसीबाबू के पास गया और उन्होने फौरन दो हजार रुपये की जमानत दे दी। इस आदमी को नौकरी तो मिल गई, लेकिन कुछ बरसो बाद बैंक से कुछ रुपया गायब हो गया। आदमी देनदार ठहराया गया और जमानती होने के कारण बसीबाबू को वह हानि पूरी करने के लिए कहा गया। स्वभावत ही वह इस जिम्मेदारी से छूटना चाहते थे। प्रश्न यह था कि जमानत की शर्ते इस मुकदमे के अनुकूल है। बैंक ने अदालत मे मुकदमा किया और कानपुर की अदालत ने फैसला दिया कि बसीबाबू देनदार है और उन्हे यह अदायगी करनी होगी। वह इलाहाबाद आए और इस मामले को अपने घनिष्ठ मित्र पडित मोतीलाल और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के पास ले गए। बसीबाबू जब कभी इलाहाबाद आया करते थे तो मेरा खयाल है कि वह हमेशा आनन्द भवन मे ठहरा करते थे। दोनो ने ही इस मामले को निराशापूर्ण

बताया। उसके बाद वह मेरे पास आए। मुझे बडा आश्चर्य हुआ, लेकिन वह बिल्कुल स्पष्टवादी थे । उन्होने कहा कि पडित मोतीलाल से मैंने सलाह ली थी। मोतीलाल ने कागजात भी पढे, परतु मामले को निराशापूर्ण बताया । पर साथ ही उन्होने यह भी कहा कि यह मामला बहुत ही मामूली-सा है । मुझे यह निराशापूर्ण जान पडता है, लेकिन मेरा सुझाव है कि इन छोटे मुकदमो के लिए तुम्हे जवाहरलाल और कैलास-नाथ-जैसे नए खिलाडियो के पास जाना चाहिए । उन्हे अपने कागजात दिखाओ। उनके पास काफी समय है और बहुत मुमकिन है कि वे कोई नुक्ता खोज निकाले। न तो मेरे पास और न तेजबहादुर के पास समय है और न हमारी इसमे कोई दिलचस्पी है । इस तरह बसीबाबू मेरे पास आए थे। ये बाते दोहराने के बाद वह मुझसे बोले, "मै जवाहर-लाल से तो मिल चुका हूँ और अब मै आपके पास आया हूँ। चाहे कुछ भी हो इसकी मुझे परवाह नही, लेकिन मैंने इस मामले पर अदालत मे लडने का फैसला किया है। मैं अभी तक किसी मुकदमे मे कभी नही हारा हूँ और मुझे विश्वास है कि आप दोनो मेरे इस मुकदमे को जीतेगे।" मै हँसा और बोला, "यह तो सलाह माँगना नही, बल्कि आदेश देना है।" तदनुसार जवाहरलाल और मैंने इस मामले का अध्ययन किया और हमे उसमे कुछ तत्व नजर आया। हमने अपील के मुद्दे लिखे और मैंने जवाहरलाल से कहा, "अपील की स्वीकृति की प्रारभिक बातो को अब तुम पूरा कर जाओ।" जवाहरलाल ने बडी कामयाबी के साथ वह काम किया। यह मामला तो मजूर हो गया; लेकिन तभी बेचारे बसीबाबू स्वय ही चल बसे और अपील की आखिरी पेशी से पहले ही जवाहरलाल भी राजनीति मे चले गए।

एक और मामले मे हम एक-दूसरे के विरोधी थे। गर्मियो के दिनो मे एक रोज नारायणदास नामक (बसीबाबू की बिरादरी का) एक व्यक्ति एक मुकदमे के फैसले के साथ आया । कानपुर मे वह यह मुकदमा हार चुका था और उसने मुझे अपील दाखिल करने को कहा। उसने मुझे

बताया कि मुकदमा तो बिलकुल निराशापूर्ण है, लेकिन अपील दाखिल करनी ही होगी, क्योकि यदि फैसला बहाल रहा तो वह उस एक मकान से बेदखल हो जायगा, जिसमे उसका परिवार लगभग पचास बरसो से रह रहा था। इसके अलावा इस समय कानपुर मे कोई मुनासिब मकान भी नही है और बरसात के दिन नजदीक है। इसलिए वह बेदखली को कुछ दिन टालना चाहता है और वह केवल अपील दाखिल करने से ही हो सकता है'। मैंने कागजो को पढा और सचमुच यह मुकदमा बिलकुल निकम्मा था। इसकी शुरूआत औरतो के बीच झगडे से हुई थी। पता लगा कि एक सपन्न व्यक्ति (नारायणदास के नाना) के तीन बेटे और एक बेटी थी। उसके पास बहुत-सी जायदाद और कई रिहायशी मकान थे। बेटी एक मध्यम वर्ग के परिवार मे ब्याही गई थी और पिता ने अपनी बेटी को इन मकानो मे से एक मे रिहायश की मजूरी दे दी थी। वह न केवल अपने पिता के जीवनकाल मे ही वहाँ रही, बल्कि उसकी मृत्यु के बाद भी अपने भाइयो की रजामदी से रहती रही। ये लोग असदिग्ध रूप मे उस सपत्ति के मालिक थे। कमेटी के रजिस्टरो मे मालिको के तौर पर उनके नाम दर्ज थे, वे सब तरह के टैक्स अदा करते थे और अगर मै गलती नही करता तो वे मकान के एक हिस्से मे अपनी गायो को भी रखा करते थे। आखिरकार तीनो भाइयो ने अपना बँटवारा कर लिया। यह मकान उनमे से उस एकके हिस्से आया, जो स्वत निस्सन्तान था और उसकी मृत्युके बाद उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होने के नाते इस मकान की मालकिन बन गई। यह १९१४ की बात है। इस मकान मे इस औरत की ननद अपने बच्चो और पोतो के साथ रहती थी। मुझे बताया गया कि दोनो औरतो मे मेल-जोल था, लेकिन कुछ दिन हुए, उनमे आपस मे कुछ झगडा-सा होगया। इसपर इस मकान-मालकिन ने ननद से कह दिया, "मेरे मकान से निकल जाओ।" वह नही निकली और इसलिए यह मुकदमा हुआ। इस मामले का कोई जवाब नही था और न कोई वसीयत थी। इतने पर भी प्रति-वादी के वकीलो ने समय लेने के लिए विपरीत स्वत्वाधिकार का समर्थन

किया और एक छोटे जज ने उनके पक्ष मे फैसला भी दे दिया। जिला जज की अदालत मे अपील करने पर यह मामला खत्म हो गया, क्योकि विपरीत स्वत्वाधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता था। जिला जज ने मकान-मालकिन के हक मे फैसला किया। जैसा कि मै पहले भी कह चुका हूँ, नारायणदास खुद भी जानता था कि इस मामले मे जान नही है, और वह चार मास तक इस मकान मे और रहना चाहता था। मैने उससे साफ-साफ कह दिया कि यह मामला मेरी ताकत से बाहर है। अगर मेरे जैसे जूनियर वकील ने इसकी अपील की प्रारभिक पेशी मे बहस की तो मुमकिन है कि यह मजूर ही न हो। इसलिए किसी बडे वकील को ही करना चाहिए। नारायणदास फौरन मान गया और मैने डाक्टर तेजबहादुर को प्रेरणा की कि वह मुकदमे मे मेरे बडे वकील बन जायॅ। अपील एक जज के सामने पेश हुई, जो मजूरी देने मे तनिक उदार थे। डाक्टर सप्रू उठे और उन्होने कहा, "कानूनी प्रश्न अवधि-सबधी है।" और विद्वान् जज ने कहा, "नोटिस जारी कर दिया जाय।" इस तरह एक बाधा तो पार की गई और उसके बाद मैने बेदखली की आज्ञा को रोकने की दरख्वास्त दी, जो यथाक्रम मजूर कर ली गई। कुछ सप्ताहो के बाद वकीलो की लाइ-ब्रेरी मे पडित मोतीलाल ने विनोद मे कहा, "कैलासनाथ, क्या तुमने यह नियम ही बना लिया है कि कानपुरके हरएक मुकदमेकी अपील की जाय?" पहले तो मै समझा नही और बोला, "भाईजी, क्या बात है ?" इसपर वह बोले, "वह बुढिया औरत आनद भवन मे आई थी और जवाहरलाल की मॉ के पास गई थी। उसने अपना सारा मामला उनसे कहा था। इसके बाद उन्होने इस विषय मे मुझसे चर्चा की और मुझे उसे मजूर करना पडा। यह बिलकुल ही निकम्मा मुकदमा है। तुमने इसकी अपील कैसे की ?" इसपर मैने उन्हे सारी कहानी सुनाई और उन्होने वादी का मामला लेना स्वीकार किया।

मै समझता हूँ कि लगभग दो बरस के बाद वह अपील चीफ जज सर हेनरी रिचर्ड्स और श्री जस्टिस रफीक के सामने पेश हुई। पडित

मोतीलाल उस दिन थे तो इलाहाबाद मे ही, लेकिन सभवत उन्हे घर पर ही कोई अधिक आवश्यक काम था, इसलिए उन्होने इस मुकदमे की अपील जवाहरलाल को सौप दी। इस तरह जवाहरलाल अपने पिता की ओर से इस मुकदमे मे पेश हुए।

अदालत के कमरे मे बडी भीड थी। मेरे बडे वकील डाक्टर तेजबहादुर मेरे पास बैठे थे। डाक्टर सप्रू और मै दोनो ही जानते थे कि यह मुकदमा निस्सार है। जब मुकदमा पेश हुआ तो स्वभावत मै आशा करता था कि डाक्टर सप्रू खडे होगे। लेकिन उन्होने मुझसे कहा, "कैलासनाथ, इसमे है तो कुछ नही। तुम्ही जवाब दो और इसे खत्म करो।" मै उठा और मैने अभिनय शुरू किया। मैने केवल तथ्य ही पेश किए और कई बार दोहराया कि बेटी और उसका परिवार चालीस साल से भी ज्यादा समय से मकान मे रह रहा है और अधिक जोर देने के लिए मैने कहा, "श्रीमान्, नारायणदास तो वस्तुत इस मकान मे ही पैदा हुआ था।" जब मैने यह कहा तो मैने देखा कि सर हेनरी रिचर्ड्स ने अपना मुँह एक कापी से ढँक लिया और उन्हे झपकी आ गई। साथी जज ने भी इस बात को भाँप लिया और उन्होने बडे टेढे-टेढे सवाल मुझसे किए। जब यह प्रश्नोत्तर जारी था तो मैने देखा कि सर हेनरी के मुंह पर पडी कापी हिलने-डुलने लगी है। स्पष्टतया वह जाग गए थे और हर किसी को यह जाहिर करने की कोशिश कर रहे थे कि वह वास्तव मे सोए नही थे, लेकिन बडी गहराई के साथ मुकदमे का अध्ययन कर रहे थे। मैने उन्हे देखा कि वह मुकदमे को उस जगह पर पढ रहे थे जहाँ नारायणदास को पैतीस वर्ष की आयु का बताया गया था। उनके सोने से पहले मैने यह आखिरी शब्द कहे थे, "श्रीमान्, नारायणदास इस घर मे ही पैदा हुआ था।" मैने देखा कि उन्होने फिर पन्ना पलटा और एकाएक मुझसे पूछा, "क्या तुमने यह कहा था कि नारायणदास इस घर मे पैदा हुआ था?" मैने कहा, "हाँ जनाब, यही।"

चीफ जज बोले, "लेकिन नारायणदास की उम्र तो पैतीस वर्ष की है।"

मैंने जवाब दिया "जनाब, यही तो मेरा तर्क है। यह परिवार इस मकान मे पिछले पचास वर्ष से है और बच्चे और पोते इसमे पैदा हुए है।"

चीफ जज बोले, "बडी फिजूल बात है। दूसरी ओर से कौन है?"

इससे पहले कि मै अपनी बात की पुष्टि मे कुछ और निरर्थक बाते कहने की कोशिश करूँ, डाक्टर सप्रू ने मेरे चोगे के छोर को खीचा और फुसफुसाए कि बस करो, और मैंने वैसा ही किया। अब जवाहरलाल की बारी थी। जवाहरलाल ने बडी शान्ति के साथ कहा कि यह मामला स्वत्वाधिकार के प्रश्न का है और जिला जज ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। सर हेनरी रिचर्ड्स ने निर्णयात्मक ढग से कहा, "हॉ, मुझे मालूम है। यह तथ्य मालूम करने का मामला है और इसमे हम दखल नही दे सकते, लेकिन मै आपको यह बता दूँ कि तथ्य-ज्ञान का यह सर्वथा विपरीत रूप है। वादी के पक्ष मे कोई न्याय की बात नही है।" सर हेनरी कुछ समय तक ऐसा ही कुछ कहते रहे और तब एकाएक बोले, "लेकिन आपका पक्ष तो औरत का है। इस मामले मे औरत का अस्तित्व कहॉ से आ गया?"

जवाहरलाल ने तीन भाइयो के बॅटवारे का उल्लेख किया और कहा कि उनके मुवक्किल को यह मकान उसके पति के उत्तराधिकार से प्राप्त हुआ है। लेकिन चीफ जज ने कुछ नही सुना। वह बोले, "यह सयुक्त परिवार की सपत्ति है। एक हिन्दू स्त्री उस सयुक्त परिवार मे उत्तराधिकार नही पा सकती। आपको तीन भाइयो मे बॅटवारे का सबूत देना होगा।"

इस पर जवाहरलाल ने जिला जज के फैसले मे से एक-दो वाक्यो का उल्लेख किया, लेकिन सर हेनरी पर कोई असर न हुआ।

चीफ जज ने कहा, "यह तो एक सरसरी बात है, यह तथ्य-ज्ञान नही है। दिखाइए, आपने कहॉ इस बात का उल्लेख किया है कि आपको यह मकान इस ढग से हासिल हुआ। बॅटवारे का क्या प्रमाण है?"

इसके बाद जवाहरलाल ने कहा कि प्रतिवादियो ने इस तर्क से कही इन्कार नही किया और यदि जनाब का यह खयाल है कि इसे उचित रूप मे पेश नही किया गया तो यह मामला उचित निर्णय के लिए निचली अदालत

के पास भेज देना चाहिए।

सर हेनरी ने कुछ नही सुना और तनिक कठोरता से बोले, "यह ऐसा मुकदमा नही है, जिसमे अदालत आपकी किसी भी रूप मे रत्ती भर भी सहायता कर सके। यह आपका काम था कि आप इस आपत्ति को अपने बयान मे ठीक ढग से पेश करते, जिससे निर्णयात्मक प्रश्न प्रमाण के लिए उपस्थित हो जाता। इस स्तर पर हम इसे निचली अदालत मे नही भेजेंगे।"

जवाहरलाल ने एक घटे से भी अधिक समय तक सघर्ष किया, लेकिन सब बेकार रहा। तत्काल फैसला कर दिया गया और अपील मजूर हो गई। मुकदमा मय खर्चे के खारिज हो गया।

इस फैसले से मकान-मालकिन को बडा आघात पहुँचा और वह रोती-चिल्लाती फिर मोतीलालजी के पास आनद भवन मे आई। मोतीलालजी ने फैसले की नजरसानी के लिए दरख्वास्त दी और कई महीनो के बाद इसकी सुनाई हुई। मोतीलालजी जैसे ही उठे और उन्होने सक्षेप मे तथ्यो का वर्णन करने के बाद बहस शुरू करनी चाही तो सर हेनरी बोले, "पडितजी, मुझे यह मुकदमा अच्छी तरह से याद है और जवाहरलाल ने बहुत अच्छी तरह इसपर बहस की थी। गलत या सही, हम इस अदालत मे मुकदमो पर दुबारा बहस नही होने देगे। दरख्वास्त नामजूर। अगला मुकदमा बुलाओ।"

सर हेनरी ने ये शब्द इतने विनोदपूर्ण ढग से कहे थे कि मोतीलालजी भी हँसे बिना न रह सके।

१९१९ के बाद मै समझता हूँ कि जवाहरलाल कई बार अदालतो मे पेश हुए है, लेकिन वकील के तौर पर नही, बल्कि एक कैदी के रूप मे। अतिम बार वह १९४५ मे आजाद हिद फौज के मुकदमे मे दिल्ली के लाल किले मे उपस्थित हुए थे। निश्चय ही इस ऐतिहासिक अवसर पर वह एक वकील के रूप मे पेश हुए थे।

# 'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

## गांधीजी लिखित

१ प्रार्थना-प्रवचन (भाग १) ३)
२ ,, ,, (भाग २) २॥)
३ गीता-माता ४)
४ पन्द्रह अगस्त के बाद १॥), २)
५ धर्मनीति १॥), २)
६ द०अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
७ मेरे समकालीन ५)
८ आत्मकथा ५)
९ गीता-बोध ॥)
१० अनासक्तियोग १॥)
११ ग्राम-सेवा ।=)
१२ मगल-प्रभात ।=)
१३ सर्वोदय ।=)
१४ नीति-धर्म ।=)
१५ आश्रमवासियो से ।=)
१६ राष्ट्रवाणी १)
१७ सत्यवीर की कथा ।)
१८ सक्षिप्त आत्मकथा १॥)
१९ हिंद-स्वराज्य ।॥)
२० अनीति की राह पर १)
२१ बापू की सीख ॥)
२२ गाधी-शिक्षा (३ भाग) १=)
२३ आज का विचार ।=)
२४ ब्रह्मचर्य (२ भाग) १।॥)

## विनोबाजी की लिखी

२५ विनोबा-विचार (२ भाग) ३)
२६ गीता-प्रवचन १), १।॥)
२७ शान्ति-यात्रा १॥)
२८ जीवन और शिक्षण १)
२९ स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
३० ईशावास्यवृत्ति ।॥)
३१ ईशावास्योपनिषद =)
३२ सर्वोदय-विचार १=)
३३ स्वराज्य-शास्त्र ।॥)
३४ भू-दान यज्ञ ।)
३५ गाधीजी को श्रद्धाजलि ।=)
३६ राजघाट की सनिधि मे ।॥)
३७ विचार-पोथी १)
३८ सर्वोदय का घोषणापत्र ।)
३९ जमाने की माँग =)

## नेहरूजी की लिखी

४० मेरी कहानी ८)
४१ हिन्दुस्तान की समस्याएँ २॥)
४२ लडखडाती दुनिया २)
४३ राष्ट्रपिता २)
४४ राजनीति से दूर २)
४५ हमारी समस्याये (२भाग) १)
४६ विश्व-इतिहास की झलक २१)
४७ स० हिन्दुस्तान की कहानी ५)
४८ नया भारत ।)

## अन्य लेखको की

४९ गाधीजी की देन १॥)
५० गाधी-मार्ग =)
५१ महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५२ कुब्जा सुन्दरी ,, २)
५३ शिशु-पालन ,, ॥)
५४ कारावास-कहानी १०)
५५ गाधी की कहानी (लु फि ) ४)
२५ भारत-विभाजन की कहानी ४)
५७ बापू के चरणो मे २॥)
५८ इग्लैंड मे गाधीजी २)
५९ बा, बापू और भाई ॥)
६० गाधी-विचार-दोहन १॥)
६१ अहिसा की शक्ति (ग्रेग) १॥)
६२ सर्वोदय-तत्व-दर्शन ७)
६३ सत्याग्रह-मीमासा ३॥)
६४ बुद्धवाणी (वियोगी हरि) १)

६५ सन्त सुधासार (वि०हरि) ११)
६६ सतवाणी ,, १॥)
६७ श्रद्धाकण ,, १)
६८ प्रार्थना (वियोगी हरि) ॥)
६९ अयोध्याकाण्ड ,, १)
७० भागवत-धर्म (ह उ) ६॥)
७१ श्रेयार्थी जमनालालजी ,, ६॥)
७२ स्वतन्त्रता की ओर ,, ४)
७३ बापू के आश्रम मे ,, १)
८४ मानवता के झरने (माव) १॥)
७५ बापू (घ० बिडला) २)
७६ रूप और स्वरूप ,, ॥=)
७७ डायरी के पन्ने ,, १)
७८ ध्रुवोपाख्यान ,, ।)
७९ स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय) १)
८० मेरी मुक्ति की कहानी ,, १॥)
८१ प्रेम मे भगवान ,, २)
८२ जीवन-साधना ,, १।)
८३ कलवार की करतूत ,, ।)
८४ हमारे जमाने की गुलामी,, ।॥)
८५ बुराई कैसे मिटे ? ,, १)
८६ बालको का विवेक ,, ।॥)
८७ हम करे क्या ? ,,, ३॥)
८८ धर्म और सदाचार ,, १।)
८९ अधेरे मे उजाला ,, १॥)
९० कल्पवृक्ष (वा अग्रवाल) २)
९१ लोक-जीवन (कालेलकर) ३॥)
९२ हिमालय की गोद मे २)
९३ साहित्य और जीवन २)
९४ कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १॥)
९५ राजनीति प्रवेशिका १)
९६ जीवन-सदेश (ख जिब्रान) १।)
९७ अशोक के फूल ३)
९८ जीवन-प्रभात ५)
९९ का का इतिहास ३ भाग ३०)
१०० पचदशी १॥)
१०१ सप्तदशी २)
१०२ रीढ की हड्डी १॥)
१०३ अमिट रेखाये ३)
१०४ एक आदर्श महिला १)
१०५ राष्ट्रीय गीत ।)
१०६ तामिल-वेद (तिरुकुरल) १॥)
१०७ आत्म-रहस्य ३)
१०८ थेरी-गाथाएँ १॥)
१०९ बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
११० जातक-कथा (आनद कौ) २॥)
१११ हमारे गावकी कहानी १॥)
११२ साग-भाजी की खेती ३॥)
११३ पशुओ का इलाज ॥)
११४ रामतीर्थ-सदेश (३ भाग) १≡)
११५ रोटीका सवाल ३)
११६ नवयुवको से दो बाते ,, ।=)
११७ पुरुषार्थ (डा० भगवानदास) ६)
११८ काश्मीर पर हमला २)
११९ शिष्टाचार ॥=)
१२० भारतीय सस्कृति ३॥)
१२१ आधुनिक भारत ५)
१२२ कादम्बरी ।=)
१२३ उत्तररामचरित ।=)
१२४ वेणीसहार ।=)
१२५ शकुतला ।=)
१२६ मृच्छकटिक ।=)
१२७ मुद्राराक्षस ।=)
१२८ नलोदय ।=)
१२९ नागानद ।=)
१३० रघुवश ।=)
१३१ स्वप्नवासवदत्ता ।=)
१३२ मालविकाग्निमित्र ।=)
१३३ हर्षचरित ।=)
१३४ किरातार्जुनीय ।=)
१३५ समाज विकास माला (२४ पुस्तकें) ९)